सूचीपत्र

योगाभ्यासानुक्रमः

सन्ध्या प्रकरणम्

—

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय शिवाय गुरवे नमः ॥

जगद्व्याप्ताय शान्ताय शिवायोङ्काररूपिणे ।
नमो विधाय लोकेभ्यो योगसन्ध्यां समारभे ॥

यो देवेभ्यऽआतपाति यो देवानाम्पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये १
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तछंह देवमात्मबुद्धिं प्रकाशम्मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये २ तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं । पतिं पतीनां परमं परस्तात् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति

तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति

तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्
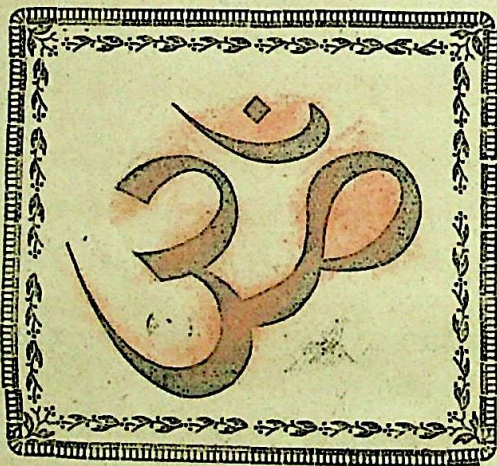
अवतीत्योम्

जो पालन करे अर्थात् त्रिविधतापों का निवारण करे उसका नाम ओम् है ॥

कठवल्ली उपनिषद् ।

एतदेवाक्षरं ब्रह्म चैतदेवाक्षरं परम् ।
एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

यही अक्षर परब्रह्म और सगुण ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म इसी अक्षर ब्रह्म को जानने से ब्रह्मलोक प्राप्त हो कर मुक्त होजाता है यही उत्तम आधार है यही उत्तम तारक है इस को जान के ब्रह्मलोक में पूजित होता है ।

पाद्मे ।

ॐतस्तस्य मात्राः स्युरकारोकारकौ तथा ।
मकारश्चावसानेऽर्द्धमात्रेति परिकीर्त्तिता ॥
अकार उच्यते रुद्रो मकारश्च पितामहः ।
उकार उच्यते विष्णुस्तत्परं ज्योतिरोमिति ॥

उसकी अर्थात् इस प्रणव की चार मात्रा है अकार, उकार, मकार और अन्त में नादरूप आधी मात्रा है अकार रुद्र और मकार ब्रह्मा और उकार विष्णु कहे जाते हैं तीनों मिलके (ओम्) हुआ इसी को परमज्योति कहते हैं ।

पूर्वत्र भूश्च ऋग्वेदो ब्रह्माष्टवसवस्तथा ।
गार्हपत्यश्च गायत्री गङ्गा प्रातःसवस्तथा

द्वितीयाच भुवो विष्णुःरुद्रोनुष्टुब् यजुस्तथा ।
यमुना दक्षिणाग्निश्च माध्यन्दिनसवस्तथा ॥
तृतीया च सुवः सामान्यादित्यश्च महेश्वरः ।
अग्निराहवनीयश्च जगती च सरस्वती ।
तृतीयं सवनं प्रोक्तमथर्वत्वेन यन्मतम् ।
चतुर्थी यावसानेऽर्द्ध मात्रा सा सोमलोकगा ॥
अथर्वाङ्गिरसः संवर्तकोऽग्निर्मरुतस्तथा ।
विराट् सभ्यावसथ्यौ च शुतुद्रिर्यज्ञपुच्छकः ॥
प्रथमा रक्तवर्णास्याद् द्वितीया भास्वरी मता ।
तृतीया विद्युदाभास्याच्चतुर्थी शुक्लवर्णिनी ॥

(अ)पहिली अकाररूप मात्रामें भूर्लोक, ऋग्वेद, ब्रह्मदेव, आठवसु, गार्हपत्यअग्नि, गंगानदी, गायत्री छन्द और प्रातः सवन ये निवास करते हैं (उ) दूसरी उकार मात्रा में भुवर्लोक, विष्णु, रुद्र, अनुष्टुप् छन्द, यजुर्वेद, यमुनानदी, दक्षिणाग्नि, माध्यन्दिन सवन ये देवता निवास करते हैं (म) तीसरी मकार मात्रा में स्वर्लोक, सामवेद, आदित्य, महेश्वर, आहवनीयाग्नि, जगतीछन्द, सरस्वती, नदी, अथर्ववेद और तृतीय सवन ये निवास करते हैं और (अर्द्धमात्रा) चौथी मात्रामें सोमलोक, अथर्वांगिरसगाथा, संवर्तक अग्नि, मरुलोक, विराट् सभ्य, आवसथ्यअग्नि, शुतुद्री नदी और यज्ञपुच्छ ये देवता निवास करते हैं और पहिली मात्रा रक्तवर्ण (लाल) दूसरी भास्वर प्रकाशमय

तीसरी बिजुलीकी वर्णकी तरह और चौथी मात्रा श्वेतवर्ण है।

अपरंच इस महामंत्र की व्याख्या कहां तक कोई करेगा वेद शास्त्र पुराणादि सब इस के अभ्यन्तर हैं (बहुत ग्रन्थों का मत है कि ओङ्कार में तीनही मात्रा हैं) इसी महामंत्र की वन्दना शेषशारदा औ ऋष्यादि अहर्निश किया ही करते हैं परन्तु, वन्दना पूरी नहीं होती तो मनुष्य अरपक्ष कहां तक करेगा और लिखेगा केवल अपनी बुद्धिकी सीमा ही पहुंचाना है चाहे मनुष्य वेद शास्त्र सम्पन्न क्यों न हो परन्तु विना तपस्या के इस मन्त्र का स्वाद दुर्लभ है।

यही तारक मंत्र है जिस से "न स पुनरावर्तते" अर्थात् जिसको जानने से फिर जन्म नहीं लेता इस लिये साधक (अभ्यासी) इसको साधन चतुष्टय संपन्न हो अभ्यास करें॥

(साधनचतुष्टय) नित्यानित्यवस्तुविवेकः। नित्य आत्मा और अनित्य देहादि प्रपञ्च॥ इस देहादि प्रपंच से विरक्त हो के आत्मा को पहिचानना यह प्रथम साधन है॥

द्वि० इहामुत्रार्थफलभोगविरागः॥ इह नाम इस लोक में राज्यसंपत्त्यादि सुख॥ अमुत्र नाम वैकुण्ठ कैलाश गोलोकादि स्वर्गलोकों का सुख, इनदोनों विषयों को प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे नाशवान् जानके विरक्त होना। यह दूसरा साधन है

तृ० शमदमादि षट्कसंपत्तिः॥ (शमः कः, मनोनिग्रहः) दुष्ट वासना से मन को लौटाना। (दमः कः, चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः) रूपादि विषयोंसे नेत्र कान आदि इन्द्रियोंको रोकना (तपः किम् स्वधर्मानुष्ठानम्)

ब्रह्म कर्म करना अथवा कृच्छ्रचांद्रायणादि ब्रत करना।
(तितिक्षा का, शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम्) ठंढा गर्म सुख दुख इनको समान समझना अर्थात् सुख होने पर बहुत हर्ष नहीं करना और दुःख होने पर घबराना नहीं इसी प्रकार शीत उष्ण समझना और अपराध नहीं होते किसी ने सताया हो तो भी क्रोध न करके सहन (क्षमा) कर लेना(श्रद्धाकीदृशी, गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः) सद्गुरु का कहा हुआ जो वेदवाक्य उसको विश्वास से सत्य मानके स्वात्मरूपका अनुभव करना(समाधानंकिम् चित्तै-काग्रता) चित्त की एकाग्रता औरप्रारब्ध योगसे जिस समयमें जो राज्यादि सुख अथवा नाना दुःख मिले इन दोनों विषयोंमें हर्ष विषाद नहीं करता हुआ स्वस्थ अर्थात् परमानन्द में रहना—यह तीसरा साधन है॥

(चौ० मुमुक्षुत्वं चेति, मोक्षोमे भूयादितीच्छा) जन्म मरण से अलग कब होऊंगा और बुद्धि से परे जो ब्रह्म उनको कब देखूंगा, उनको दिखलाने वाले सद्गुरु कब प्राप्त होंगे, ऐसे अनुताप से दिन रात उदासीन रहना। इस प्रकार साधक साधन चतुष्टय संपन्न हो प्रणव का निरन्तर ध्यान करने से त्रिविधताप को उल्लंघन (लांघ) करके परमानन्द को प्राप्त होता है(त्रिविधतापोंका नाम) आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक इनकी व्याख्या यह है कि (आध्यात्मिक)दिनरात अन्तःकरणमें घर स्त्री आदि की चिन्ता से क्षण भर भी मन का समाधान न हो अथवा काम क्रोधादिकों से सुखी या दुखी होना अथवा शरीरमें ज्वरादि अनन्त

रोगोंसे अत्यन्त दुःख पाना (आधिभौतिक) व्याघ्र वृश्चिक (बीछू) चोर चुगुलादि से त्रास पाना (आधिदैविक) अनावृष्ट्यादिकोंसे अथवा दुष्कालादि से दुःख पाना भूतप्रेतादि से व्याकुल होना ॥ यह त्रिविधताप दुःख का मूल और जन्म मरण का कारण है जहां तक कि प्रणवस्वरूपी परमात्मा का ध्यान न किया जायगा तहां तक इन तापों से निवृत्त होना दुर्लभ है। साधन चतुष्टय संपन्न अभ्यासी को तो प्रणव का पूरा आनन्द प्राप्त होता है यदि थोड़े ही काल में इस महामंत्र का कुछ आनन्द देखने की इच्छा हो तो साधक एकान्त स्थान अर्थात् जहांपर दूसरेका शब्द श्रवणमें न आवे उस स्थलमें मन को एक रूप करके सिद्धासनसे वा जिस आसन में सुखपूर्वक बैठता हो बैठ सीधा शरीर कर प्रणवका जप कुछ काल पर्यन्त नित्य किया करे परन्तु नेत्रोन्मीलन (आंख मूंद) करके अथवा नासिकाग्रदृष्टि से प्रणव के रूप को देखता रहै जैसा कहा है॥

सिद्धासनं समारुह्य समकायशिरोधरः।
नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम् ॥

इस तरहसे साधक अभ्यासको करता हुआ थोड़े ही काल में अमृत सदृश आनन्दके बूंदोंका ग्रहण करने लगजाता है ॥ परन्तु इसमें भी चित्त शुद्धि किये विना कुछ नहीं (शून्यवत्)

इस लिये प्रथम मन को शुद्ध करना चाहिये क्योंकि यह मन बालक की तरह अज्ञान है अर्थात् जैसे बालक के साथ परिश्रम करनेसे बालक सुमार्गी होजाता है इसी तरह से महात्मा (सत्पुरुष) लोग मनके संग परिश्रम कर अर्थात् शनैः शनैः

वैराग्य मार्गको दिखलाते २, दुःखरूपी विषयोंसे मनको हटाते हटाते, परमात्मा के विलक्षण चरित्रोंको दर्शाते २, इस जगत्के प्रपञ्च को धिक्कारते २, परमानन्द स्वरूप को प्राप्त करा देते हैं फिर वह मन विषयों को कदापि नहीं ग्रहण करता ।

ततो मनः प्रगृह्णाति परमात्मानमव्ययम् ।
यत्तदद्दश्यमग्राह्यमस्थूलाद्युक्तिगोचरम् ॥

यह मन अविद्या का अंश होनेसे इसमें जड़ता विशेष है क्योंकि इसी के संग होने से पुरुष को संसारकी प्राप्ति हुई है

सविज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम् ।
तेनाविवेकजस्तस्मात्संसारः पुरुषस्य तु ॥

यद्यपि यह विज्ञानात्मा है परन्तु मन का संग होने से अज्ञान के कारण इस पुरुष को संसार की प्राप्ति हुई है । इससे इसकी जड़ता(अज्ञानता) वैराग्यरूपी दंड और अविनाशी प्रणव स्वरूप श्रीसदा शिवजीके चरणके ध्यानरूपी अंकुश से,ही जाती है अर्थात् मन स्वयंलय होजाता है। जैसे "वाद्यसे हरिण"॥

स्वदेहमरणिंकृत्वा प्रणवंचोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवंपश्येन्निगूढवत् ॥

इस श्रुति के अनुसार अपने देह को अरणी करके ओंकार को उत्तर अरणी करे और ध्यान रूपी मथनी के अभ्यास से मथता छिपे हुये ओङ्कार रूपी परमेश्वर को अग्नि की तरह देखे यह ध्यान का क्रम है—

अरण्योर्मथनाद्यद्वदग्निः सर्वत्रदाहकः ।
अविश्वासो न कर्तव्यः आविर्भावो निजात्मनः

जैसेअरणी नाम की लकड़ी घिसने से सब काष्ठों को ज-
लाने वाली अग्नि सर्व काष्ठों में प्रकट होती है इसी प्रकार
विश्वास करके ध्यान करने से अपना आत्मा अपने को प्रकट
दिखाई देता है। वायु से अधिक वेग, श्रेष्ठ नेष्ट को स्वीकार
करने वाला, वासना का रूप, सुख, दुःखका मूल, जिसकी चञ्च-
लताका नियम नहीं, ऐसे मनको विना निदिध्यासके कैसे कोई
वश कर सकता है—यह मन हृदय में अष्टदल कमल पर वि-
चरता रहता है यथा—

पूर्वदले पीतवर्णे यदाविश्रमते मनः।
तदा धैर्ये तथौदार्ये धर्मकीर्तौ मतिर्भवेत् ॥
अग्निकोणदले रक्ते यदाविश्रमते मनः।
तदा निद्रालुतालस्ये मंदा बुद्धिश्च जायते ॥
कृष्णवर्णे दक्षदले यदा वि०
तदा क्रोधे च द्वेषे च दुष्टत्वेपि मतिर्भवेत् ॥
नैर्ऋत्ये नीलवर्णे च यदा वि०
तदा स्त्रीपुत्रवित्तादिमोहजाले भवेन्मतिः ॥४॥
पश्चिमे कपिले वर्णे यदा वि०
तदा हास्ये विनोदे च ह्यानन्दे च भवेन्मतिः ॥५॥
वायव्ये श्यामवर्णे च यदा वि०

तदा तीर्थाटनं कृत्वा वैराग्यं प्राप्नुयान्नरः ॥८॥
उत्तरे पीतवर्णे च यदा वि०
तदा शृंगारभोगादिकरणे च भवेन्मतिः ॥ ८ ॥
सन्धौ सन्धौ मिश्रवर्णे यदा वि०
तदारोगादिभिर्ग्रस्तो जायते च सदा ध्रुवम् ॥
मध्यभागे सदा वर्णे यदा वि०
तदा शान्तौ समाधौच चैतन्ये च भवेन्मतिः १०

इस प्रकार मन के चलने की गति है (शेष जो कुछ इसके समझने का लक्ष्य है वह सद्गुरु के पास वा निदिध्यास से स्वयं प्राप्त होता है) जब इस मन को साधनादि से शुद्ध कर एक देश में लावे तब महामन्त्र रूपी धनुष और आत्मा रूपी वाण से निशाना रूप ब्रह्ममें वेधे (लगावे) तब परमानन्दकी प्राप्ति होती है जैसी श्रुति है।

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

परन्तु आत्मा क्रम २ से प्राप्त होता है जैसी श्रुति है॥

तिलेषु तैलं दधिनीवसर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः । एवमात्मात्मनिगृह्यतेसौ सत्ये नैनं तपसायोऽनुपश्यति ॥

जैसे तिलों में तेल, दधिमें घी, सोताओं में जल, अर-

सियों (लकड़ी) में अग्नि ऐसे आत्मा में ही यह आत्मा ग्रहण किया जाता है जो सत्य और तपस्या से इसे देखता है उस पुरुष से यह देखा जाता है अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासको करने से ही आत्मा को देख सकता है जैसा कहा है ॥

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।

यह संपूर्ण भूतोंमें गुप्त रूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता परन्तु संपूर्ण में वर्तमान है सूक्ष्मदर्शी श्रवण मनन निदिध्यासन साधना करने वाले पुरुषों को उग्रबुद्धि से दीखता है दूसरे मनुष्य को नहीं ।

इस विद्याके अभिलाषी पुरुष प्रथम तो पात्र हो और द्वितीय सत्पुरुष के समीप सत्संग करके अभ्यास करे कारणकि विना पात्रत्व के उत्तम वस्तु देने पर ठहर नहीं सकती जैसा पिघला हुआ घी हाथ पर रखने से पृथ्वी पर गिर पड़ता है इसी तरह अधिकार प्राप्त हुये विना भार नहीं संभाल सकता अर्थात् जैसे अमीरों को घृत दुग्ध अधिक सेवन से बादी करके शरीर फूल जाता है आधा मील चलना कठिन हो जाता है और वही परिश्रम करने वाले को वीरता देता है पहलवान (मल्ल) होते हैं इसका सारांश पाचन शक्ति है पचने से अर्थात् शनैः शनैः अभ्यास करने से ज्ञान की प्रबलता और काम क्रोधादि रूपी विकारों से आरोग्यता रहती है ॥ और न पच जैसे अर्थात् अभ्यास न करने से और केवल वाग्विलासही रखने से अभाव रूपी मन्दाग्नि उत्पन्न हो कर नाना प्रकार के काम क्रोधादिकों के दुःखरूपी रोगों की वृद्धि होती है जिससे फिर कहां का कहां चला जाता है—

जैसा कि वर्तमान काल में अनधिकारियों के घरमें भी बहुत ग्रंथ रक्खे हैं तो क्या वह पढ़ने से अधिकारी हो गये, नहीं नहीं उनको अभावरूपी मन्दाग्नि है और भी वर्तमान काल में जिनको कामादिक की चेष्टा है वह पुरुष बहुधा करके वेदांती और शाक्त होते हैं क्योंकि धर्मशास्त्र ग्रंथ मानने से इच्छानुसार भोजन और कामादिक का सेवन यथार्थ रीति से नहीं होता इससे उनको वेदांत ग्रन्थ अवलोकन करना ब्रह्मज्ञानी मन से बनना यह बहुत पसन्द आता है तो क्या केवल वाग्विलासही से अधिकारी होता है ॥ नहीं २ लक्षण होना चाहिये जैसा—

मोहोमद्यं मतिर्मुद्रा मायामीनो मनः पलम् ।
मूर्च्छनं मैथुनं यस्य तेनासौ शाक्तउच्यते ॥

मोह जो देहाभिमान वही है मदिरा, और विषय भोग की चिन्ता वही है मुद्रा, और माया जो भ्रांति वही है मछरी, और मनके संकल्प विकल्प वही है मांस—इन चारों को मूर्छित करके शांत भावकी प्राप्ति वही है मैथुन का आनन्द प्राप्त जिन को उन्हीं को शाक्त कहते हैं । मद्मांस के खाने से शाक्त नहीं हो सकता—ये शाक्त के लक्षण हैं ये अधिकारी कहे जाते हैं । और श्रुति भी है कि मद्य सेवन निषिद्ध है जैसे छा०उ० ॥

हिरण्यस्य सुरांपिवछंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमाश्चाचरछंस्तै रितिश्रुतेः ॥

सुवर्णका चुराने वाला, मदिरा पीने वाला, गुरूकी स्त्री से भोग करने वाला, और ब्राह्मण का बध करने वाला यह चार महापातकी गिरते हैं और पांचवा जो उक्त महापातकियों के साथ आचरण व्यवहार करता है ॥ और वेदांती के लक्षण ॥

चिंताशून्यमदैन्यभैक्ष्यमशनं पानंसरिद्वारिषु
स्वातन्त्र्येणनिरंकुशास्थितिरभीर्निद्राश्मशानेवने
वस्त्रंक्षालनशोषणादिरहितंदिग्वास्तु शय्यामही
संचारोनिगमांतवीथिषुविदांक्रीड़ापरेब्रह्मणि १
क्वचिन्मूढोविद्वान्क्वचिदपिमहाराजविभवः ।
क्वचिद्भ्रांतःसौम्यःक्वचिदनगराचारकलितः
क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतःक्वाप्यविदित-
श्चरत्येवंप्राज्ञः सततपरमानन्दसुखितः ॥

जो चिन्ता और दीनता से रहित, भिक्षा मांगकर खाते, नदियों का जल पीते, स्वाधीन होकर किसी के वश में नहीं रहते और निर्भय रहते हैं श्मशान या बन में सो जाते हैं, वस्त्र के धोने और सुखाने से रहित, दिगम्बर रहना, भूमि में सोना, वेदांत रूपी मार्गों में विचरना है जिनका ऐसे ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म में रमण करते हैं

कहीं मूर्ख, कहीं पंडित, कहीं महाराजा के समान विभवधारी, कही भ्रांतचित्त, (पागल) कहीं सावधान, कहीं जंगलियो

कैसे आचरण युक्त, कहीं सत्पात्र से दीखते, कहीं अपमान के योग्य, कहीं छिपे हुये इस प्रकार परमानन्द से युक्त सुखपूर्वक बुद्धिमान ब्रह्मज्ञानी विचरते हैं ॥ ये वेदांती कहे जाते हैं इस स्थितिमें रहने वाले को ब्रह्मज्ञानी कहना चाहिये ।

ऐसे स्थिति वाले कर्म उपासना का परित्याग करदें तो कुछ हानि नहीं,

आत्मानमात्मनापश्यन्नकिञ्चिदिहपश्यति ।
तदाकर्मपरित्यागे न दोषोस्ति मतंमम ॥

जब ज्ञानी आत्मा से आत्मा को देखे और सब वस्तु का अभाव जान पड़े, तब कर्म को त्याग देनेमें कुछ दोष नहीं, यह हमारा मत है ॥ यह शिवसंहिता में शिव जी का वचन है ॥ और यही पुरुष ।

संवीतोयेन केनाश्नन् भक्ष्यं वा भक्ष्यमेववा ।
शयानो यत्रकुत्रापि सर्वात्मा मुच्यतेऽत्रसः ॥

जीवन मुक्त किसी प्रकार के वस्त्र धारण करे वा नग्न रहे—भक्ष्य अथवा अभक्ष्य कुछ भी खाय, चाहे जहां शयन करे वह प्रारब्ध कर्म के क्षय होजाने से मुक्त हो जाता है ॥

तीर्थेचांडालगेहेवा यदि वा नष्ट चेतनः ।
परित्यज्यन्देहमिमं ज्ञानादेव विमुच्यते ॥

तीर्थ में व चाण्डाल के घरमें देह त्याग करे अथवा ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ किंवा अचेत न हो कर मृतक होजाय वह ज्ञानके बल से मुक्त ही हो जाता है अभिप्राय यह है

कि जो उक्त स्थितिसें ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्महीको प्राप्त होता है और वह ब्रह्म ही है जैसा श्रुति है ॥

ब्रह्मविदाप्नोति परम् । ब्रह्मविद्‌ब्रह्मैव भवति ।

जो गृहस्थ बिना स्थिति के कर्म, उपासना का त्याग कर वेदान्त पर प्रीति करता है वह अवश्य ही अधोगति का अधिकारी होता है इसमें कुछ सदेह नहीं ।

वेदांत को सन्यासी– ब्रह्मचारी व गृहस्थ ही जिसने प्रपंच को त्याग दिया है वह सत्पुरुष के पास जाकर उपदेश से धारण करे तब तो ठीक है और दूसरें को तो वही मन्दाग्निही है, इसी से बिना चित्त शुद्ध किये वेदांत शास्त्रका अधिकारी नहीं होता अर्थात् जब त्याग, वैराग्य की इच्छा करे तब सद्‌गुरु के पास जाकर वेदान्त शास्त्रको श्रवण कर मनन, निदिध्यास करे तब तो स्वाद मिलता है जैसा श्रुति है ।

मुंडके ॥ तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

वह समिध (गुरुके उपयोग वस्तु) हाथ में लिये नम्रता पूर्वक विशेष ज्ञानार्थ (परंपद प्राप्त्यर्थ) वेदशास्त्र संपन्न दयावान ब्रह्मनिष्ठ (तपश्चर्या करने वाला) गुरु के समीप शरण को प्राप्त होय । और केवल पुस्तकों को बाच याद कर लेने से कर्म, उपासना का भी त्याग होजाता है जो कर्म उपासना मरण पर्यन्त गृहस्थ को त्यागना योग्य नहीं है जैसा श्रुति है

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यतेनरे ॥

कर्म को करता ही हुआ सैकड़ों वर्ष जीनेको चाहो ऐसा ही करने से दुष्कृति से लिप्त न होगे दूसरे तरह नहीं किन्तु कर्महीसे तुम्हारी सद्गति होगी इसमें सन्देह नहीं। और तप, दम कर्मादि से ही ब्रह्म विद्या प्राप्त होती है जैसा श्रुति है—केनोपनिषद् ।

तस्यै तपोदमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यमायतनम् ॥

उसकी अर्थात् ब्रह्म विद्या प्राप्त्यर्थ तप, दम, कर्म आदि उपाय हैं वेद चार अंगो सहित चरणवत हैं और सत्य निवासस्थान है॥ और क्या पूर्वके ऋषि लोग मूर्ख रहे जो यज्ञादिक कर्मकांड को न त्याग किया जोकि ऋषि लोग पूर्ण ब्रह्म ज्ञानी और दश २ सहस्त्र वर्ष पर्यन्त समाधिस्थ रहते रहे अब तो भाइयों को अष्टोत्तर शत गायत्री जपने को भी सावकाश नही मिलता तो बाचनेसे ही अपनेको वेदान्तवेत्ता ब्रह्मज्ञानी मान लिया—यह बड़ी अज्ञानता है॥

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात् ।
साधनं च भवेत्पुंसां वैराग्यादि चतुष्टयम् ॥

अपने २ वर्णाश्रम का धर्म्म चरण करनेसे तथा ईश्वरकी आराधना करने से मनुष्य को वैराग्यादि चार साधन प्राप्त होते हैं। वर्णाश्रम का धर्म यही श्रेयस्कर है और मुक्ति का दाता है—वर्णाश्रम के धर्म में तत्पर रहते हुए ऊपर लिखे हुये क्रमसे जो पुरुष महामंत्र का अभ्यास करेगा वह अवश्यही आनन्द को प्राप्त होगा ॥

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंतियोगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकारं तं नमाम्यहम् ॥

बिन्दु सहित ओंकार को निरन्तर ध्यान करते हैं यह ओंकार का ध्यान मनोवांछित सिद्धि और मोक्ष दोनों का देने वाला है तिस ओंकार को मेरा नमस्कार है ।

जो ब्राह्मण परब्रह्म स्वरूप समझ कर ध्यान किया करेगा उसको अवश्य परमात्मा क्या है यह जान पड़ेगा कारण कि विना ध्यान किये चित्त का लय नहीं होता और जहां तक कि चित्त स्थिर नहीं होगा तहां तक ध्यानमें रूप नहीं दर्शित हो सकता विना दर्शित भये मन ठहरता नहीं तो स्वाद कहां से मिलेगा और रूप देखते २ ज्यों २ आनन्द भासित होगा त्यों २ यह मन सूक्ष्मदर्शी होता जायगा जब मन सूक्ष्म दर्शी हो जायगा तब परमात्मा निराकार, निरंजन, निरामय, निर्विकल्प, अथवा व्यापक किस प्रकार से है यह आप से आप ही भासित होगा और जो कोई चाहे कि विना निदिध्यासही से ईश्वरानुभव प्राप्त हो जाय अर्थात् वाग्विलास से ही समझ ले तो हे भाइयो यह कदापि नहीं हो सकता क्योंकि परमात्मा तो श्रुतिः मुंडके ॥

सत्येन लभ्यस्तपसाह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥

यह आत्मा नित्य सत्य से प्राप्त होने योग्य है, तप से प्राप्त होने योग्य है, यथार्थ आत्मज्ञान के दर्शन से प्राप्त होने योग्य है और नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त होने योग्य है ॥

इस लिये शिव, विष्णु, शक्ति आदि जिन पर अनन्य प्रीति हो उसी को प्रणवस्वरूप मानकर शिव, विष्णवादि के मूर्त्ति का ध्यान करे अर्थात् प्रणव का जप करता हुआ प्रथम स्थूल मूर्त्ति का ध्यान करे साध्य हो जाने पर उससे सूक्ष्म (छोटी) मूर्ति का ध्यान करे पुनः इसी क्रमसे उत्तरोत्तर सूक्ष्म दृष्टि करते २ परमात्मा का आनन्दानुभव अर्थात् महान् प्रकाश दर्शित होता है और इष्टदेव का सूक्ष्म सुशोभन रूप इच्छा करने से उसी समय दिखाई देता है ॥

विचारदर्पणे योवै यत्नात्सूक्ष्मं विलोकयेत् ।
दृश्यते यत्रयद्रूपं नूनं तन्नस्वकात्पृथक् ॥

विचार रूपी दर्पण (सीसा० आदर्श कांच० ऐना) में उपाय करने से ज्ञानदृष्टि से देखने में जो रूप देख परता है अर्थात् निश्चय होता है वह रूप निःसंदेह अपने आत्मा से भिन्न नहीं है और यदि कोई विना निदध्यास के ही बातोंओं से समझा चाहे तो वहां बुद्धि नहीं पहुंच सकती कारण कि जब स्थूलही को नहीं समझ सकते तब सूक्ष्मको किस तरहसे समझेंगे जैसा श्वेताश्वतर उपनिषद् में जीवका आकार कहा है ॥

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः सविज्ञेयः सचानन्त्याय कल्प्यते ॥

केश के अग्र भाग का सौ वां भाग उस का भी सौ वां (शतांश) भाग करके जो प्रमाण किया जाय वही सूक्ष्मता जीव की है ॥ इस पर हे भाइयो मेरा ऐसा कथन है कि केश (बार) के अग्रभाग का सौ टुकड़ा (कुटका) किस तरह हो

सकता है पुनः उसका शतांश भाग समझना तो श्रवण मात्र और कथन मात्र है अर्थात् नहीं समझा जाता यहां पर बुद्धि किसी तरह नहीं पहुंच सकती जैसा श्रुति है ॥

यतोवाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सहेति श्रुतेः ॥

हे भाइयो जिसमें बुद्धि नहीं पहुंच सकती उसको बिना निदिध्यास ही के समझा चाहते हो क्योंकि जो सगुण उपासना अर्थात् मूर्त्ति मान का ध्यान जो समझने योग्य और प्रत्यक्ष देख रहे हो और सनातन से मूर्त्ति पूजन ध्यान का क्रम चला आया और अद्यापि पर्यन्त चला जाता है उस में चित्त नहीं लगता बल्कि निन्दा में तत्पर हो तो क्या भाइयो कर्म उपासना का त्याग करना, काम क्रोधादिक की गठरी शिर पर रखना, निन्दा करने में किसी देवता को छोड़ना नहीं, निदिध्याससे मतलब नहीं, अहम्‌ब्रह्म अहम् ब्रह्म बकते रहना, क्या ब्रह्मवेत्ताके यही लक्षण हैं जैसा पंचदशीमें कहा है॥

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीना च ये नराः ।
न स तत्पदमाप्नोति पुनरा यांति यांति च ॥

जो नर अहम् ब्रह्म २ कहने में तो कुशल हैं परन्तु आचरण शुद्ध नहीं है वे मुक्त नहीं होते, पुनः २ जन्म लिया ही करते हैं ॥ इससे हे भाइयो इस अज्ञान का परित्याग कर काम क्रोधादिक को शांत करो, निन्दाको छोड़ो "सर्व चांडाल-निन्दकः" मनुष्य की निन्दा करने वाले को चांडाल कहते

हैं तो देवताओं की निन्दा करने से तो बुद्धि की भ्रष्टताही इस लिये बुद्धि को सुधारना चाहिये—देखिये सगुण उपासना बहुत लोगोंने लाभ उठाया है अगस्त्य, वामदेव, सनका वशिष्ट, व्यासादि ऋषि, ध्रुव, सगर, दलीपादि राजा, हि ण्याक्ष, हिरण्य कश्यपादिदैत्य, रावण, बाणासुरादि राक्षसों तपश्चर्या के प्रताप से अपना अभीष्ट सिद्ध किया अर्थात् मू र्त्ति मान का ध्यान किया और वही मूर्तिमान इष्ट प्रत्यक्ष होकर वर प्रदान दिया यह बात पुराणोंसे विदित है उपरां जिस जिसने तपश्चर्या किया वह मूर्तिमान ही की किय और मूर्तिमान ही परमात्मा उनको दर्शित हो उन का अ भीष्ट सिद्ध किया और थोड़ा ही काल का अर्शा हुआ कि श्री अस्परमपूज्य शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, वल्ल भाचार्य इत्यादि सत्पुरुष हो गये जिनका मत अद्यावधि चला जाता है—क्योंकि परमात्मा सर्व व्यापक है और अनन्त शक्ति है वही सगुण निर्गुण रूप वही निराकार निर्विकार, और साकार है जैसा श्रुति है ॥

सब्रह्मासशिवः सहरिः सेन्द्रःसोऽक्षरः परमःस्वराट्।

वही परमात्मा ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र, अक्षर परम-स्वराट् है पुनः श्रुतिः "एकं रूपं बहुधायः करोति" वही एक अनेक रूप को धारण करता है ॥ हे भाइयो जब श्रुति ही का ऐसा कथन है तो कर्म, उपासना का क्यों त्याग करना—कर्म उपासना से ही जन्म जन्मांतरके कल्मष नष्ट होते हैं और शरीर का कर्म तो छूटता नहीं जैसा ॥

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥

पुनः सत्कर्म जो सुबुद्धि को उत्पन्न करने वाला, चित्त शुद्ध करने वाला उसको क्यों छोड़ना ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥

जनकादि कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त होगये कि जिनके पास ऋषि लोग भी उपदेश लेने को जाते थे। बिना कर्म किये अन्तः करणकी मलीनता जाती नहीं और जहां तक अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा तहां तक शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी बिना ज्ञान के मोक्ष हो नहीं सकता—अपरंच मोक्ष कोई कैलाश वैकुंठ सदृश लोक नहीं है केवल हृदय की अज्ञानता रूप ग्रंथि का छूट जानाही मोक्ष कहाता है जैसा।

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति नग्रामान्तरमेववा ।
अज्ञान हृदयग्रंथि नाशो मोक्ष इतिस्मृतः ॥

एकही परमात्मा चराचर में व्याप्त है ऐसा निश्चय मान कर कामक्रोधादि, मानाऽपमान, सुखदुःखादिसे रहित हो ब्रह्ममय होजाना यही मोक्ष का रूप है॥ परन्तु हे भाइयो जिस किसी की ऐसी स्थिति हो जायगी वह निन्दा स्तुति से रहित रहेगा—इस करके जो कर्म ज्ञान को प्राप्त कर देने वाला है उस कर्म का परित्याग नहीं करना—कर्म और ज्ञान इनका परस्पर सम्बन्ध है जैसा। योग वासिष्ठ में ॥

उभाभ्या मेवपक्षाभ्यां यथाखे पक्षिणां गतिः ।
तथैव ज्ञानकर्माभ्यां प्राप्यते शाश्वतीगतिः ॥

जैसे पक्षी आकाश में दोनों पंखों से उड़ते हैं इसी प्रकार ज्ञान और कर्म से मुक्ति होती है। जब सब प्रकार से कर्म ही प्रधान पाया जाता है तब कर्म उपासना के त्यागने से क्या प्राप्त हो सकता है सगुण उपासना से चित्तकी शुद्धता (एकाग्रता) अवश्य होती है॥

सगुणोपासनाभिस्तु चित्तैकाग्रंविधाय च।

जहां तक चित्त शुद्ध न होगा तहां तक ज्ञान की दृढ़ प्राप्ति दुर्लभ है इस लिये वादाविवाद को छोड़ निदिध्यास करो विना निदिध्यास के चाहे शास्त्र अवलोकन करते करते, वादाविवाद करते २ आयुष्य पूरी हो जावे परन्तु आनन्दानुभव नहीं प्राप्त होगा जैसा॥

भावाभावात्मकं तद्वत् कार्यकारणरूपधृक्।
नात्मेतिबोधयेच्छास्त्रमात्मानं बुद्ध्यते स्वयम्॥

जैसे इच्छा और इच्छा का स्वरूप इच्छा शक्ति भिन्न नहीं होती इसी प्रकार विश्वव्यापी आत्मा का ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं होता इसी कारण आत्मा का ज्ञान शास्त्रादिके द्वारा नहीं होता आत्मा का ज्ञान आत्मा ही से आत्मा ही को होता है इसी आत्मा को॥

एतमेकेवदंत्यग्निं मनुमन्येप्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्॥

कोई यज्ञ करने वाले अग्नि भाव से उपासना करते और कोई मनु आदि के नाम रूपसे उपासना करते हैं और कोई

न्द्रादि देवताओंके नाम से उपासना करते, और कोई प्राण वायु रूप से उपासना करते और कोई सनातन ब्रह्म कह कर उपासना करते हैं, जैसा श्रुति है ॥ "एकं सत्पुरुषा बहुधा वदन्ति" ॥ एकही को सत्पुरुष बहुल प्रकार से कहते हैं ॥ लिये कि इसी विश्वव्यापी आत्मा को अनेकों प्रकारसे यजन करते हैं जिस २ भाव से साधक देखने की इच्छा करता है उसी २ प्रकार से यह आत्मा दर्शित होता है क्योंकि आत्मा में अनन्त शक्ति है परन्तु यह सब बातें जभी होंगी जब सद्गुरु की सेवा करके निदिध्यास करोगे जैसा।

निर्मोहो निरहंकारः समः सङ्ग विवर्जितः।
सदाशान्त्यादियुक्तः सन्नात्मन्यात्मा न मीक्षते।
यत्सदाध्यान योगेन तन्निदिध्यासनं स्मृतम्।

ममता और अहंकार रहित सबमें समान संग वर्जित शांत आदि साधन संपन्न होकर निरन्तर ध्यान योग से आत्माको आत्माही से ध्यान करने को निदिध्यासन कहते हैं। हे भाइयो अवश्य अभ्यास करना चाहिये क्योंकि यह मनुष्य का शरीर बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है।

सोपान भूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यस्तारयतिनात्मानं तस्मात्पाप तरोत्रकः ॥

मनुष्य का शरीर मोक्ष पद पाने की सीढ़ी है और बहुल कठिनता से प्राप्त होता है ऐसे शरीर को पा कर जो अपने आत्मा को संसार सागर से नहीं उद्धार करता उस से अधिक और कौन पापी है ॥

अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः।
कदाचिल्लभते जंतुर्मानुष्यं पुण्य संचयात्॥

इस संसार में जीवों के हजारों वा करोड़ों जन्म व्यतीत होने के पीछे कभी दैवयोग से अनेक जन्म के पुण्य एकत्र होने से मनुष्यता प्राप्त होती है इससे ऐसा समय पाकर जो मोक्ष साधन न किया उसका जन्म वृथा है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्य कोपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से जो मनुष्य एक भी साधन न किया उसका जन्म बकरी के गले स्तन समान निरर्थक है। इस लिये कर्म, उपासना, ज्ञान इन का परस्पर संबन्ध अर्थात् कर्म का भी उपासना का भी, और ज्ञान का भी अभ्यास एकही है अर्थात् कर्म करने वाला परमात्माको कर्मरूप से दृढ़ माने। "ब्रह्मकर्म समाधिनेति"॥ उपासना वाला उपासना रूप करके परमात्मा को देखे और हे परमात्मन् तू ही सब का प्रेरक और सबमें सब प्रकार से व्याप्त है ऐसा निश्चय रक्खे इसी का नाम ज्ञान है।

इसी से कर्म का त्याग न करे क्योंकि कर्म से भक्ति उत्पन्न होती है जब भक्ति उत्पन्न भई तब मनुष्य का दुष्टाऽचरण नष्ट हो जाता है जब आचरण शुद्ध हो गया तब ज्ञान स्वयं होता है और ज्ञान वैराग्यही मोक्षका रूप है ऐसा समझ कर अभ्यास अवश्य करना चाहिये। कर्मसे अन्तःकरण की शुद्धि और उपासना से चित्त की एकाग्रता और

एकाग्रता ध्यानसे होती है वह ध्यान मोक्ष का रूपही है जैसा

तद् गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च ।
ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थ मचिरात्प्रविमुच्यते ॥

इस मनुष्य शरीर की रक्षा धर्मके अर्थ करना और धर्म आत्मा के ज्ञान के लिये करना और आत्मा का ज्ञान ध्यान योग के लिये करना क्योंकि ध्यानयोग से मोक्ष पाने में विलम्ब नहीं होता और ध्यान के सदृश दूसरा कुछ नहीं जैसा।

जातिमाश्रममङ्गानि देशकालमथापि वा ।
आसनादीनि कर्माणि ध्यानं नापेक्षते क्वचित् ॥

जाति, आश्रम, अङ्ग देश, काल किंवा आसनादि साधन यह कोई भी ध्यानयोग के समान नहीं हैं और शिव गीता में भी कहा है ॥

संसारान्मुच्यते जन्तुःशिवतादात्म्यभावनात्।
तथा दानं तपो वेदाध्ययनं चान्यकर्म वा-
सहस्रांशं तु नार्हंति सर्वदा ध्यानकर्मणः ॥

श्रीशिवजी के तादात्म्य ध्यान से अर्थात् (शिवोऽहं) इस प्रकार अन्तःकरण की एक वृत्ति करने से यह प्राणी संसार के पार हो जाता है जिस प्रकार ध्यान, तप, वेदाध्ययन वा दूसरे कर्म हैं वह ध्यान करने के सहस्रभाग के भी समान नहीं हो सकते ॥ इसी से सब मंत्र प्रयोगों में ध्यान कहा है ध्यान करने से मंत्राधिपतिदेवता का साक्षात्कार होता है (परन्तु अब लोगोंने ध्यान के श्लोक को पाठ कर के ही फल

मानलिया है) इस महामन्त्रको जो कोई थोड़ा काल भी अभ्यास किया करेगा उसको अवश्य चित्त की विश्रांति प्राप्त होगी ॥

चित्त की विश्रांति प्राप्त करने वाली षण्मुखी मुद्रा उपयोगी है

श्रुत्योरंगुष्ठकौ मध्यांगुल्यौ नासापुटद्वये ।
वदनप्रांतके चान्यांगुलीर्दद्याच्च नेत्रयोः ॥

दोनों अंगूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनी से दोनों नेत्रों को, दोनों मध्यमा से दोनों नाकके छिद्रों को, दोनों अनामिका कनिष्ठिका से मुख के दोनों ओठों को बन्द करे ॥

निरुध्य मारुतं योगी यदैव कुरुते भृशम् ।
तदा तत्क्षणमात्मानं ज्योतीरूपं स पश्यति ॥

इस प्रकार योगी वायु को रोक कर वारंवार अभ्यास करे तो आत्मा ज्योतिःस्वरूप देख पड़ता है ॥

यः करोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानवः ।
स वै ब्रह्मविलीनः स्यात् पापकर्मरतो यदि ॥

जो मनुष्य सर्वदा गुप्त आचार से इस मुद्रा को अभ्यास किया करता है वह निश्चय कर के ब्रह्म में लय होता है अर्थात् अभ्यास करते २ परमात्मा का अपार चरित्र समक्ष में आने लगता है तब यह प्रपंच का विस्तार मिथ्या जान पड़ता है वह पहिले, चाहे पापकर्मों में भी रत रहा हो । इस मुद्रा के अभ्यास से चित्त की विश्रांति अवश्य प्राप्त होती है नाना प्रकार के चित्र विचित्र ज्योतिः स्वरूप का दर्शन होताहै और तत्वों का आकार अर्थात् पृथ्वी का चतुष्कोण पीतवर्ण, जल का अर्धचंद्राकार श्वेतवर्ण अग्निका त्रिकोण रक्तवर्ण वायु

का नील हरितवर्ण, गोलाकार (वर्तुल) और आकाश का भिन्न विचित्र वर्ण दर्शित होता है ॥ और इन्हीं पंचतत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति और लय होतीहै जैसा आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्नि से जल—जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है पुनः पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में और वायु आकाश में लय होता है और भी विशेष यह है कि यह पंच महाभूत अहङ्कार में, अहङ्कार महतत्व में, महतत्व मूल प्रकृति माया में, और माया सब के आधारभूत परमात्मा में लय होती है। और इन तत्वों के भेद का जाननेवाला योगी कहाता है और योगी ही काल को जीतता है।

खण्डयित्वा कालदंडं ब्रह्मांडे विचरन्ति ते ।

काल दंडको जीतकर ब्रह्मांडमें वे विचरते हैं क्योंकि आत्मा का जन्म मरण तो है नहीं इन्हीं भूतों का ही उत्पत्ति लय है योगी इस भेद को जानता है इसी से योगी श्रेष्ट है और इसी मुद्रा के अभ्यास से दशविध नाद सुनाई देने लगता है जिस नाद को सुनकर मन अवश्य लय को प्राप्त होता है यह नाद का अनुसंधान (सुनना) मन के लय करनेका अत्यन्त सुगम उपाय है (इसको योग प्रकरण में लिखूंगा) और भी मनके शुद्ध करने का उपाय सात्विक आहार है जैसा शुद्ध अन्न भोजन में आवैगा तदनुसारही मन की वृत्ति होगी ,इस से कटूवम्लादि पदार्थ का सेवन निषेध है जैसा श्रुति है। छा०उ०॥

अन्नमाशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत् पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माछंसयोऽणिष्ठस्तन्मनः ॥

भोजन किया हुआ अन्न तीन प्रकार विभाग को पाता है तहां उसका जो स्थूल भाग है वह विष्ठा (मल) होता है जो मध्यम भाग है वह मांस होता है और जो सूक्ष्म भाग है वह मन होता है ॥ इसी से पूर्व में ऋषि लोग कन्दमूलादि भोजन करते थे कि जिससे मन में विकार न उत्पन्न हो और अनुष्ठानों में इसी वास्ते हविष्यान्न भोजन कहा है कि जिससे अनुष्ठान में चित्त स्थिर रहे (परन्तु अब तो ब्राह्मण भाइयों को चटनी, अचार, मिर्चा, तैलादि के पदार्थ भोजन में न मिलें तो चित्त प्रसन्न हो नहीं होता और ये पदार्थ रोग और काम क्रोधके उत्पन्न करने वाले हैं परन्तु येही प्रिय हैं) शुद्ध अन्नके भोजन, आरण्य (बनजंगल) में तप करने और शांत्यादि से युक्त होने ही से अमर पद (मोक्ष) प्राप्त होता है जैसा श्रुति है ॥ मुंडके ॥

तपः श्रद्धे ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ।

जो शान्त विद्वान् भिक्षाके अन्न का भोजन करते हुये अरण्य (जंगल बन) विषे तप और श्रद्धा को सेवन करते हैं वो सूर्यद्वार (उत्तरायण रूपद्वार) से विरज हुये (पुण्य पाप कर्मसे रहित हुए) जाते हैं जिस विषे (जहांपर) अमृत रूपसे अविनाशी स्वभाववाला पुरुष स्थित है । और वर्तमान काल में अरण्य का तप, भिक्षा का भोजन यह ब्राह्मण भाइयों से होना दुर्लभ है और तपसेही ब्रह्म जाना जाता है जैसा श्रुतिहै "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्वेति" तप करके ब्रह्मको जान

"स्वधर्मानुष्ठानमेव तपः" स्वधर्म (ब्रह्मकर्म, अर्थात संध्या गायत्री का जप, देवतार्चन, वैश्वदेव वेदाध्ययन, आदि कर्म श्रद्धा से करना) यही तप है-यही ब्रह्मकर्म ब्रह्म को प्राप्त करेगा इससे ब्रह्म कर्म (स्वधर्म) ब्राह्मण भाई कभी भी न त्याग करें "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" क्योंकि स्वधर्म का त्याग करने से बुद्धि में विकार ही उत्पन्न होता है एतदर्थ स्वधर्म का पालन, परोपकार, सत्पुरुष का सत्संङ्ग करना (सत्संगतिः कथय किंन करोति पुंसाम्) और शास्त्र का अवलोकन, और सत्यभाषण भी करना क्योंकि श्रुतिः।

"समूलं वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति॥

जो झूंठ बोलता है वह जड़ सहित सूख जाता है दुराचारियों के संगति और द्वेष का परित्याग करना क्योंकि श्रुतिः। पर्यैण म्रियन्ते द्विषन्तः॥ द्वेष करने वाले सब ओर से मरते हैं सद्योग में रत रहना इत्यादि वाक्यों को सर्वदा धारण करना चाहिये॥ और आठप्रहर के मध्य में जिस समय सावकाश मिले उस समय उक्त लिखे हुए क्रम से महामंत्र ओंकार का उच्चारण करता हुआ नित्य जो ध्यान किया करेगा वह अवश्यही अन्त में मोक्ष को प्राप्त होगा क्योंकि नित्य प्रति अभ्यास करने से महामन्त्र में प्रीति हो जायगी जब प्रीति हो गई तो अवश्यही अन्त में उच्चारण होगा और जब जिससे इस महामन्त्र का देहान्त के समय में उच्चारण हो जावे तो उसको मोक्ष होना क्या दुर्लभ है जैसा यु०३०वा०॥

ॐ क्रतो स्मर कृतᳪस्मर ॐ क्रतो स्मर कृतᳪस्मर॥

जो पुरुष सावधान चित्त करके देहान्त पर्यंत प्रणव की उपासना करता है वह पुरुष शरीर त्यागने के समय अपने मन से कहता है कि हे "क्रतः" संकल्प विकल्प के कर्ता मन ओंकार को स्मरण करो अर्थात् जिस काल के साधने के अर्थ यावत आयुष्य प्रणव की उपासना किया है वह काल अब उपस्थित है इससे ओंकार को स्मरण करो कि जिसके प्रभावसे ब्रह्मलोक में ब्रह्मा द्वारा प्रणव का उपदेशपाय अमृतत्व को प्राप्त होवोगे इस लिये हे मन अब इस काल में अपने कल्याणार्थ ओंकार को स्मरण करो। प्रश्नोपनिषद् की श्रुति है

सयोहवै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकार मभिध्यायीत, कतमं वा वस तेन लोकं जयतीति ॥

इस उपनिषद् में सत्य कामा नामक ऋषि ने अपने आचार्य्यादि पिप्पलादि ऋषियोंसे प्रश्न किया है कि हे भगवन् मनुष्यों में जो कोई मरण पर्यन्त सम्यक् प्रकार से प्रणव की उपासना करता है वह कौन से लोकको प्राप्त होता है ॥

तस्मै सहोवाच-एतद्वैसत्यकामपरञ्चापरञ्च ब्रह्मयदोंकारस्तस्माद्विद्वानेते नैवा यतनं नैकतर मन्वेति ॥

पिप्पलाद ऋषि कहते हैं कि हे सत्यकाम यह जो परब्रह्म और अपरब्रह्म है वह ओंकारही है अर्थात् जो सत्य अक्षर पुरुष इत्यादि नामों करके परब्रह्म है और सब से प्रथम उत्पन्न भया प्राण (सूत्रात्मा) नाम करके अपरब्रह्म है वहदोनों

प्रकार का ओंकार ही है तिससे इस प्रकार जानने वाला विद्वान् पुरुष इस ध्यान से ही दोनों में से एक को पावता है।

ओमिति ब्रह्म ॥ ओंकार एवेदं सर्वम् ॥

ओं यह ब्रह्म है, ओंकारही यह सर्व है॥ गौडपादीयकारिका॥

युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवोब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥

ओंकार निर्भय रूप ब्रह्म है ओंकार में चित्त लगावना, प्रणव में नित्य चित्त लगावने वाले को भय कहीं नहीं होता-अन्य भी श्रुति, स्मृति, कारिकादिक का प्रमाण है—अभिप्राय यह है कि यह ओंकारही परब्रह्म है, इससे इसकी उपासना में अर्थात् सायुज्य मुक्ति प्राप्त्यर्थ में प्रधान साधन योग मार्ग है अतः अब दूसरे प्रकरणमें योग मार्ग कहता हूं ॥ ग्रम् ॥

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ

श्रीगणेशायनमः ।

योगाऽभ्यासानुक्रमः ।

श्रीआदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै
येनोपदिष्टा हठ योगविद्या ।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोग
मारोढुमिच्छो रधिरोहिणीव ॥१॥

जिस श्री आदिनाथ अर्थात् शिवजीने पार्वती से यह हठ योग विद्या कही है जो सर्वोत्तम राजयोग पर चढ़ने के लिये सीढ़ी के समान है उस श्री आदिनाथ को नमस्कार है (अधिरोहिणी–निसेनी–पैरी सीढ़ी यह भाषा भेद है) हठयोग उसको कहते हैं कि।

हकारः कीर्त्तितः सूर्यष्ठकारश्चंद्र उच्यते ।
सूर्यचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते ॥

"ह"कार सूर्य "ठ"कार चन्द्रमा इन दोनों का जो योग अर्थात् सूर्य चंद्रमा जो प्राण अपान हैं उन की एकता से जो प्राणायाम उसको हठयोग कहते हैं ॥ और जो लोग सुन करके ही हठयोग का अर्थ न समझ राजयोग २ बका करते हैं उनकी अज्ञानता और आलस्य सिद्ध होती है अर्थात् वे अभ्यासी नहीं हैं केवल वाग्विलासी हैं–हे प्रलापियो आलस्य परित्याग कर वैराग्य की दृढ़ता से गुरूपदेश ले अभ्यास करो तब इसका आनन्द मिलेगा नहीं तो दुर्लभ है ।

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्वदर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ।

बिना सद्गुरु की सेवा किये इस लोक और परलोक के सुख रूपी विषय का त्यागना, आत्मा का अनुभव, तुरीय अवस्था, (समाधि) ये दुर्लभ हैं-इस करके आलस्य छोड़ जो अभ्यास करे तब हठ योग क्या वस्तु है वह आप ही प्रकाशित होगा ॥

बिन्दुःशिवोरजःशक्तिश्चन्द्रोबिन्दुरजोरविः ।
अनयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥

बिन्दु शिव, रजशक्ति है और बिंदुचंद्र, रजसूर्य है अर्थात् शिवशक्ति की एकता होने से योग सिद्धि होकर परमपद मिलता है-चंद्र सूर्य का (प्राणवायु अपानवायु का-जीवात्मा परमात्मा का) एक करना यही हठयोग पदका अर्थ है ।

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ।
न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ।

हठ और राजयोग का परस्पर संबंध है-विना हठ के राजयोग और बिना राजयोग के हठयोग सिद्ध नहीं होता इस लिये जब तक राजयोग सिद्ध न हो तब तक दोनों का अभ्यास करता रहे । हठयोग अर्थात् प्राण अपान को एक रूप करके मनावसे प्राणायाम करना जिससे जन्मजन्मांतरकेकिल्बिष नष्ट हो चित्त शुद्ध हो जाता है और प्राणायाम करते करते सुषुम्ना नाड़ी कफ आदि बंधन से रहित हो जाती है ॥

अनर्गला सुषुम्ना च हठ सिद्धिश्च जायते ।

जब सुषुम्ना नाड़ी शुद्ध हुई तो गुरूपदिष्टमार्ग से ब्रह्मरंध्र को जीव के संग गमन करती है जहां जीवात्मा परमात्मा सहस्र दलमें एकही भासता है यह हठयोगकी प्रणाली है। और राजयोग अर्थात् काम क्रोधादिकोंको शमन (नाश) कर चित्तको एकाग्र करना जैसा कि "साधनचतुष्टय" (नित्यानित्यवस्तुविवेकः-इहामुत्रार्थफलभोगविरागः । शमदमादि षट्क संपत्तिः, मुमुक्षुत्वं चेति) का संप्रदाय है (इसको प्रणव प्रतिपादन में कह आया हूं) तो हे भाइयो क्या राजयोग को आपने मिसरी (सिता) का रस (शर्बत) समझा है-जब कि सीधा रस्ता एकही वायु की उपासना करने से ये सब साधन स्वयं होजाते हैं तो इसको त्याग करना उत्तम पक्ष समझा गया । हेभाइयो राजयोग२ का बकना परित्याग कर प्राणायाम का अभ्यास करो जिस से चित्त की शुद्धता और परमानन्द की प्राप्ति हो क्योंकि ॥

सुषुम्ना वाहिनि प्राणे सिद्ध्यत्येव मनोन्मनी ।
अन्यथा त्वितराभ्यासाः प्रयासायैव योगिनाम्

जब प्राण सुषुम्नामें सुखसे बहने (चलने) लगता है तब मनोन्मनी अवस्था (समाधि) सिद्ध हो जाती है और प्राण के सुषुम्ना वाही न होनेपर तो सुषुम्ना के अभ्यास से भिन्न जितने अभ्यास योगियों के हैं वे सब वृथा हैं यथा ।

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते ॥

पवन अर्थात् प्राणायाम करते २ जब वायु यथेष्ट काल पर्यन्त ठहरने लगी तब मन आपही वश होजाता है-इससे हे

भाइयो प्राणायाम का अभ्यास करो और राजयोग तो मन के धर्म संकल्प विकल्पके नष्ट होने कोही कहते हैं कारण कि जब मन की कल्पना जाती रहती है तब वह पुरुष इच्छा रहित हो जाता है इससे अन्य अधिक आनन्द क्या है? एवं राजयोग और हठयोग का परस्पर संबंध है—गुरूपदिष्ट मार्ग से प्राणायाम करते २ मनको जीतना यह हठयोग हुआ और वैराग्य धारण कर जगत् को मिथ्यामान मनको एकाग्र कर परमात्मा में लगाना यह राजयोग हुआ—इस तरह दोनोंका अभ्यास करने से अवश्य समाधि सिद्धि हो जाती है—

राजयोगः, समाधिश्च, उन्मनी, च मनोन्मनी।
अमरत्वं, लयस्तत्वं, शून्याशून्य, परं पदम्।
अमनस्कं, तथा द्वैतं, निरालंबं, निरञ्जनम्।
जीवन्मुक्तिश्च, सहजा, तुर्या, चेत्येकवाचकः।

ये सब समाधि के ही नाम हैं इन सबका अभिप्राय एक ही है—हठयोग के मार्गसे जो जिज्ञासु समाधि लगाता है वह पुरुष जीवन मुक्त है इस में संदेह नहीं—दूसरे मार्ग से ऐसा नहीं हो सकता जैसा कि हठयोग के मार्ग से होता है—कारण कि हठ योगीही काल को जीतता है ॥

खण्डयित्वा कालदंडं ब्रह्मांडे विचरन्ति ते।

इस करके हे साधको जो आत्मज्ञान की इच्छा है तो योगाभ्यास करो विना योगके आत्मज्ञान नहीं होता और वह चिरकाल के अभ्यास सेही होता है जैसा। स्कन्द पुराणे ॥

आत्मज्ञानेन मुक्तिःस्यात्तच्च योगादृते नहि।

स च योगीश्वरं कालमभ्यासादेव सिध्यति ॥

कूर्मपुराणे ॥

योगाग्निर्दहतिक्षिप्रमशेषं पापपंजरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ॥

योगरूप अग्नि शीघ्रही पापके समूहको दग्ध करता है और प्रसन्न ज्ञान होता है, ज्ञानसे मोक्ष होता है । अत्रिसंहितायां ॥

योगात्संप्राप्यते ज्ञानं योगाद्धर्मस्य लक्षणम् ।
योगः परं तपोज्ञेयस्तस्माद्युक्तः समभ्यसेत् ।
न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्नचेज्यया ।
गतिं गंतुं द्विजाःशक्ता योगात्संप्राप्नुवंति याम् ।

योग करके ही ज्ञान की प्राप्तिहोती है, योगसे ही धर्म प्राप्त होता है, योगही परम तप है इससे योग का सदा अभ्यास करना उचित है, योगाभ्यास करके जिस गति को प्राप्त होते हैं सो उग्र तप करके और मंत्रों के जप करके वा यज्ञों के अनुष्ठान करने से भी तिस गतिको द्विज लोग प्राप्त होने में समर्थ नहीं होते हैं ॥ श्रुतिः ॥

अथतद्दर्शनाभ्युपायो योगः ॥ अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वाधीरो हर्षशोकौ जहाति

तिस आत्मा के साक्षात् करने में एक योग ही उपाय है दूसरा नहीं, वा योगाभ्यास द्वारा ही तिस आत्मादेव को जान कर धीर पुरुष हर्ष शोक (जन्म मरण) रूप संसार का परित्याग करते हैं । गरुड़पुराणे ॥

भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम् ।

इस संसार के दुःखियों को योग ही उत्तम औषध है "योगवीजे" ॥

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोपि धर्मज्ञोपि जितेन्द्रियः ।
विना योगेन देवोपि न मोक्षं लभते प्रिये ॥

ज्ञानी हो वा त्यागी हो वा धर्मवान् हो अथवा इन्द्रियोंके जीतने वाला हो परन्तु योगके विना हेप्रिये देव भी मोक्षको नहीं प्राप्त होता है । योगवाशिष्ठे ॥

दुःसहा राम संसारविषवेगा विशूचिका ।
योगगारुड़मंत्रेण पावनेनोपशाम्यति ॥

हे रामचन्द्रजी यह संसाररूप विषविशूचिका (हैजा) का वेग बड़ा दुःखदाई है वह योगरूप गारुड़ के मंत्र करके शांति को प्राप्त होता है अन्यथा नहीं—ध्यानद्वीपे ॥

योगो मुख्यस्ततस्तेषां धीदर्पस्तेन नश्यति ।

जिन मुमुक्षु पुरुषों का चित्त नानाप्रकार के संकल्प विकल्पों करके चंचल है तिनको योगाभ्यासही चित्तकी एकाग्रता का मुख्य साधन है । योगवीजे ॥ पार्वत्यु वाच ॥

ज्ञानादेव हि मोक्षं च वदंति ज्ञानिनः सदा ।
न कथंसिद्धयोगेन योगः किं मोक्षदो भवेत् ॥

पार्वती जीने प्रश्न किया कि हे ईश्वर केवल ज्ञान करके ही मोक्ष की प्राप्ति होती है अन्य साधन करके नहीं, ऐसे सब ज्ञानी लोग कहते हैं तो तुम सिद्ध भये योगको ही किसप्रकार

से मोक्ष का देने हारा कहते हो। ईश्वर उवाच ॥

ज्ञानेनैव हि मोक्षं च तेषां वाक्यं तु नान्यथा।
सर्वे वदंति खड्गेन जयो भवति तर्हिकिम् ॥
विना युद्धेन वीर्येण कथं जय मवाप्नुयात्।
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत् ॥

हे प्रिये केवल ज्ञानसे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है अन्य साधन से नहीं यद्यपि यह तिनका कथन यथार्थ है तथापि जैसे सब लोग कहते हैं कि खड्ग (तलवार) से शत्रु का पराजय होता है तो इस तरह कहने से क्या हुआ—बिना युद्ध औरबल के केवल खड्गसे कहीं जीत होती है तैसेही बिना योगाभ्यास के केवल ज्ञान मुक्ति नहीं दे सकता है। बृहदारण्योपनिषदि।

तदेव सक्तः सहकर्मणैति
लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य ॥

अन्त कालके समय में इस पुरुष का मन जिस वस्तु विषे आसक्त होता है तिसही वस्तु के सहित कर्मोंको प्राप्त होतेहैं॥ महाभारत मोक्षपर्वमें भीष्मपितामह का वाक्य युधिष्ठिरप्रति॥

यथा च निमिषाः स्थूला जालंभित्वापुनर्जलम्।
प्रविशंति यथा योगास्तत्पदंवीतकल्मषाः ॥
यथैव वागुरां छित्वा बलवंतो यथामृगाः।
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्व बन्धनैः ॥
अबलाश्च मृगा राजन् वागुरासु तथा परे।

विनश्यन्ति न संदेहस्तद्वद्योग बलाद्दते ॥

हेराजन् जिस प्रकारसे स्थूल(मोटा)मगरमच्छ बलसे जालको तोड़ करके पुनः अपने निवासस्थान जलमें चला जाता है तैसे ही योगी लोग प्रारब्ध कर्म रूप जालको योगरूप बलसे छेदन करके सब पापों से रहित भये पुनः अपने निवासस्थान ब्रह्म में एकीभाव को प्राप्त होते हैं । जैसा बलवान मृग जाल को तोड़ करके सब बन्धनोंसे मुक्त हुए इच्छानुसार विमल मार्ग (सीधा सुन्दर रस्ता) को प्राप्त होते हैं और जो बल से हीन होते हैं वे जालमें बंधेही मृत्यु को प्राप्त होते हैं—तैसे ही जो पुरुष योग रूप बल करके युक्त हैं वह प्रारब्ध कर्मरूप जालको भेदन (तोड़) करके देहादि सर्व बन्धनोंसे रहित भये ब्रह्मभाव रूप इच्छानुसार विमलमार्गको प्राप्त होते हैं औरजो योगबल करके हीन हैं वह कर्मरूप जालमेंही पतित भये नाना प्रकार की योनियों में भ्रमण रूप मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ योगबीजे ।

देहावसानसमये चित्ते यद्यद्विभावयेत् ।
तत्तदेव भवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम् ॥
देहांते किं भवेज्जन्म तन्नजानंति मानवाः ।
तस्मात् ज्ञानं च वैराग्यं जपश्च केवलं श्रमः
पिपीलिका यदा लग्ना देहे ज्ञानाद्विमुच्यते ।
असौ किं वृश्चिकैर्दष्टो देहांते वा कथं सुखी ।

देहके अन्त समयमें जीव जिस २ को विचारता है वही वह जीव हो जाता है यही जन्म का कारण है । देह के अन्त में

कौन जन्म होगा यह मनुष्य नहीं जानते हैं जिस से ज्ञान, वैराग्य, जपये केवल श्रममात्र हैं॥ जब पिपीलिका (चेंटी) देहमें लग जाती हैं और ज्ञानसे छूट जाती हैं तो वृश्चिकों (बीछू) से डसा हुआ यह जीव देहके अन्तमें कैसे सुखी हो सकता है॥ अभिप्राय यह है कि चींटी शरीर पर चढ़नेसे व्याकुलता होजाती है तो जब देहान्तके समयमें सहस्र बीछूके डसे (काटे) हुये दुःख से किस तरह सहनहोकर बुद्धि ठीक रहेगी इससे योगका सेवन करना यही मोक्ष का मुख्य उपाय है–योग को श्रुति, स्मृति, पुराणादि सभी श्रेष्ठ प्रतिपादन करते हैं इसी करके ऋषि लोग पूर्व में योगाभ्यासही साधन करते थे क्योंकि योगाभ्यास में रत हुए पुरुषको यदि योग सिद्ध नहुआ तो भी अधोगति नहीं होती किसी भाग्यवानहोके यहां जन्म होता है "गीतायां"।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो भिजायते ।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥

योगसे भ्रष्ट मनुष्य पवित्र धनी के कुलमें जन्म लेता है या बुद्धिमान् योगियों के कुल में होता है–इससे योगकी राह सबसे श्रेष्ट है अवश्य सेवन करना चाहिये–परन्तु योगीको दो बात साध्य किये बिना कुछ नहीं होता ।

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयोर्विनष्टः एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः ॥

चित्त की प्रवृत्ति में दो हेतु हैं एक तो वासना दूसरा प्राण वायु इन दोनों में एक के नष्ट होने से दोनों नष्ट हो जाते हैं॥ योगवासिष्ठे ॥

द्वे बीजे रामचित्तस्य प्राणस्पन्दनवासना ।
एकस्मिंश्च तयोर्नष्टे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः ।

हे राम प्राणकी क्रिया और वासना यह दोनों चित्त के बीज हैं उन दोनों के मध्यमें एकके नष्ट होने पर दोनों नष्ट हो जाते हैं । यह हठयोग का संप्रदाय है—पुनः योगवाशिष्ठ ।

तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च ।
मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानिस्थितान्यतः ।
त्रय एते समं यावन्नस्वभ्यस्ता मुहुर्मुहुः ।
तावन्न त वसंप्राप्तिर्भवत्यपि समाश्रितैः ॥

तत्त्वज्ञान मन का नाश और वासना का क्षय ये तीनों परस्पर कारण होकर दुःखसे साध्य रूप होकर स्थित हैं इससे जब तक इन तीनों का भलीभांति बारंवार अभ्यास न किया जाय तब तक अन्य कारणों से तत्त्व (ब्रह्मज्ञान) की संप्राप्ति नहीं होती है । यह राजयोग का सम्प्रदाय है । अब देखिये कि केवल वायु के निरोध से मन वशीभूत हो जाता है और एक मन के वश होने से वासना का क्षय होता है और वासना का क्षय होने से चित्त शांत होता है और चित्त शांत होने से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है ऐसा एकसे एक का परस्पर संबंध है इसी से राजयोग–हठयोग में अन्तर नहीं केवल न समझने का अन्तर है । हां इसमें यह है कि जो राजयोगके संप्रदाय को न मान कर केवल हठयोग की क्रियाओं को करता है अर्थात् षट्क्रिया ही किया करता है (क्रिया आगे कहूंगा) उसको हठयोग की सिद्धि नहीं होती ।

राजयोगमजानन्तः केवलं हठकर्मिणः ।
एतानभ्यासिनो मन्ये प्रयासफलवर्जितान् ।

राजयोग का संप्रदाय साधन चतुष्टय से चित्त शांत करना, कामक्रोधादिकों को शमनकर जगतको मिथ्या जान परमात्मा को ही नित्य अज निर्विकारादि जानके परमानन्द होना, और हठयोग का संप्रदाय वायु के निरोधसे चित्त शांत करना-इस से इनका आशय एकही है—हे ब्राह्मणों हे राजयोग को शिहरी के रस (शर्बत) समान समझने वालो जो तुम को साध्य समझ में आवे सो ग्रहण करो—परन्तु हठयोग के संप्रदाय से ही षट्चक्रों को वेधकर ब्रह्मरंध्र में जीव गमन करता है वहां सहस्र दल कमल में विचरता है जिस ब्रह्मरंध्र में पहुंचते ही जीव क्षुधातृषादि और प्रपंचादि से रहित हो जाता है और मूलाधार से आज्ञाचक्रके मध्य में जो लोकांतर हैं वह इसी मार्ग से दर्शित होते हैं अन्य प्रकार नहीं यह निश्चय है इस से हे भाइयो आलस्य का परित्याग कर राजयोग २ का प्रलाप छोड़ हठ अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करो इस में बड़ा गुण है सिद्धि और मोक्ष दोनों प्राप्त होता हैं और दीर्घ से दीर्घ काल तक आयु होसकती है कारण कि इसमें बिन्दुका पतित होना जो आयुका खंडित करने वाला है उसकी जय होती है और विंदु का रक्षा करना यही दीर्घायु का मुख्य उपाय है ।

यावद्विंदुस्थिरो देहे तावत्कालं भयं कुतः ॥

यह सब हठयोग में है अभिप्राय यह है कियोगही सब का सारांश है जैसा सब पदार्थों में घृत ॥

देहे स्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः ।

सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तंते पीठदेवताः ॥

प्राणी के इस शरीरमें सात द्वीप सहित सुमेरु है और नदी, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि, मुनि, सब नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ और पीठ देवता, आदि सब इस शरीरमें वर्तमान हैं

सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च।

उत्पत्ति और नाश के कर्ता चंद्रमा और सूर्य इस शरीर में भ्रमण (घूमना) करते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ये पांचतत्त्व सर्वदा शरीर में वर्तमान हैं।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्त्तते।
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः॥

त्रैलोक्यमें जो चराचर वस्तु हैं सो सब इसी शरीरमें मेरु के आश्रय होके सर्वत्र अपने २ व्यवहार को वर्तते हैं जो मनुष्य यह सब जानता है सो योगी है इसमें संदेह नहीं अभिप्राय यह है कि इस शरीर में सब लोकान्तर भरे हैं परन्तु बिना योगाभ्यास के किये यह नहीं मालूम हो सकते हैं-(वाग्विलासी भाई तो बात ही में त्रैलोक्य समझते हैं परन्तु यह उनका दिन निकालना है)।

अब योगमार्ग लिखता हूं

इसमें भेद ऐसा है कि अष्टाङ्ग-षड़ंगयोग ॥ अष्टांग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—यह आठ और यम नियम को छोड़ शेष आसनादि षडंग हुआ—

यमः ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश।

किसी जीव को न मारना, सच्चा बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य से रहना (वीर्य का रक्षा रखना) क्षमा (किसी के सताने पर क्रोध न करना) धीरज रखना, दया (दुःखी की रक्षा करना) नम्रता (अभिमान न करना) मिताहार भोजन ऐसा है कि दो भाग अन्न से पूरा करैं और एक भाग को जल से और चौथा भाग वायुके संचार वास्ते छोडैं यह मिताहार है

नियमाः ॥

तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्रीमती चजपोहुतम्।
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्रविशारदः।

तप, संतोष देवतामें भाव रखना, दान देना, ईश्वर पूजन, गुरुवेदांत वाक्यों को सुनना, लज्जा अर्थात् लोकापवाद को भी बचाना, बुद्धि शुद्ध राखना, जप होम करना ये दश नियम योगशास्त्र के पंडितों ने कहा है। इन यम नियमों को धारण करने वाले साधकको योग निर्विघ्नतासेसिद्धहोता है।

इसके अनन्तर आसन का क्रम कहता हूं । चौरासी लक्ष योनि है और इतनेही आसन हैं ॥

चतुराशीति लक्षाणामेकैकं समुदाहृतम् ।
ततः शिवेन पीठानां षोड़शोनं शतं कृतम् ।

चौरासी लक्ष आसनों में श्रीमहादेव स्वामी ने चौराशी आसन सार रक्खा है—हठयोग प्रदीपिका ग्रन्थ में आत्मा राम योगीने सोलह आसन कहा है । अपरंच वर्तमान काल में इस विद्या के अभिलाषी (अभ्यासी) लोग बहुत कम हैं जो कोई हैं भी उनको शुद्धमार्ग न मालूम होने से परिश्रम व्यर्थ जाताहै और हमारे इतर देशमें तो लोगों को संध्या बन्दन हीं करना दुस्तर होरहा है तब योग की क्या कथा—यहां एतदर्थ मुख्य २ आसन जो योगाभ्यासीको अवश्य प्रयोजनीय है उनको लिखताहूं

स्वस्तिकासनम् ॥

जानूर्वोरंतरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तु प्रचक्षते ॥

जानु अर्थात गांठों के बीच में दोनों पाओं (पगतली-तरवा) को लगाकर सीधा शरीर करके सावधान बैठना उसे स्वस्ति कासन कहते हैं ।

बद्ध पद्मासनम् ॥

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा । दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढ़म् ॥ अंगुष्ठौ हृदये निधाय

चिबुकं नासाग्रमालोकये । देतद्व्याधि विनाश कारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥

बायें जांघ के ऊपर दहिना पांव (चरण-तरवा) रख के तदानुसार बायां पांव दहिने जांघ के ऊपर रक्खे पुनः पृष्ठ भागसे एक हाथ घुमाके एक चरण के अंगूठे को पकड़े तदनु- सार दूसरा हाथ घुमाकर दूसरे चरणके अंगूठे को दृढ़ पकड़े- चिबुक (डाढ़ी) को हृदय के समीप दृढ़ता से लगाके नासिका के अग्रभाग को देखे यह बद्ध पद्मासन हुआ इस को लगा के कुछ काल पर्यन्त बैठने से योगियों के संपूर्ण व्याधि को नष्ट करता है उदर रोग सब प्रकारके नाश हो जाते हैं। हाथों को न घुमाकर दोनों हाथों को जानुपर उत्तान रखने से पद्मासन होता है परन्तु शेष पूर्ववत रक्खे ।

सिद्धासनम् ॥

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरं । स्थाणुःसंयमितेंद्रियोचलदृशा पश्येद्भ्रुवोरंतरं ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते

गुदा और लिंग का जो मध्य भाग (योनिस्थान) है वहां बाएं पांव की एड़ी (पार्ष्णि) लगावे और दूसरा पांव लिंगके ऊपरे भागपर रक्खे और हृदयके समीप भागमें डाढ़ी(चिबुक) दृढ़ता से लगाकर निश्चल मनसे अचल दृष्टिसे भ्रूमध्यको देख ता रहै यह मोक्षके किवाड़ का खोलने वाला सिद्धों ने सिद्धा- सन कहा है इसीको वज्रासन, मुक्तासन भी कहते हैं ।

उग्रासनम् ॥

प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ
दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा ।
जानूपरिन्यस्तललाटदेशो
वसेदिदं पश्चिम तानमाहुः ॥

दोनों पावों को पृथ्वीमें दंडा के समान फैला कर दोनों हाथों से दोनों पावोंके अंगूठे को पकड़कर गांठ (जानु)के ऊपर शिर रक्खै परन्तु पांव पृथ्वी में चिपटा रहे किंचित् भी न उठै इसको पश्चिमतान वा उग्रासन कहते हैं । इस आसनके करने से प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है अर्थात् दोनों स्वर चलने लगते हैं—यह आसनों में मुख्य आसन है इस से क्षुधा लगती है रोग का अभाव करता है उदरके सब रोगों को नष्ट करता है—वायु स्थिर होता है अजीर्णको नाश करता है ।

मयूरासनम् ॥

धरामवष्टभ्य करद्वयेन
तत्कूर्परस्थापित नाभिपार्श्वः ।
उच्चासनो दंडवदुत्थितः स्या-
न्मायूर मे तत्प्रवदन्ति पीठम् ॥

दोनों हाथों को भूमि में स्थापित करके हाथों के गांठों (मणिबन्ध) को मिला कर नाभिमें वा पार्श्वमें लगा के उसी के आधार पर दंडके समान उठा हुआ उच्चासन होता है

इसी आसनको मायूर (मोर) योगिजन कहते हैं । इस आसन के करने से गुल्म, जलोदर, तिल्ली आदि उदर रोग सब नष्ट हो जाते हैं वातपित्त कफ, आलस्य आदि दोष शमन होते हैं और कैसा भी अन्न जो पचने योग्य न हो उस को भस्म करके जठराग्नि को प्रदीप्त करता है ।

सिंहासनम् ॥

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्या पार्श्वयोः क्षिपेत्
दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके ॥
हस्तौ तु जान्वोःसंस्थाप्य स्वांगुलीःसंप्रसार्यच
व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ॥
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुंगवैः ।
बंधत्रितयसंधानं कुरुते चासनोत्तमम् ।

अंडकोश (वृषण) के नीचे सीवनी नाड़ी के दोनों पार्श्व भागों में क्रम से गुल्फों को लगावे । अर्थात् दक्षिण पार्श्व में वामगुल्फ को और वाम पार्श्वमें दक्षिण गुल्फको लगाके सावधान हो बैठे और दोनों जानुओंके ऊपर दोनों हाथ की अंगुलियों को फैलाकर स्थापित करे और मुख अच्छी तरह प्रसारित (खोलना-बाना) कर जीभ को बाहेर निकाल नासिकाके अग्रभाग को देखे । योगियोंमें जो श्रेष्ठ उसका यह सिंहासन पूजित होता है–यह संपूर्ण आसनों में श्रेष्ठ है इस के अभ्यास करने से तीनों बंध अर्थात् मूलबंध, जालन्धर बन्ध, उड्डीयान बन्ध यह आपही साध्य होजाते हैं । ये तीनोंबंध ठीक होजाने से योग अवश्य सिद्ध होता है ।

मत्स्येन्द्रासनम्

वामोरुमूलार्पितदक्षपादं
जानोर्बहिर्वेष्टितवामपादम् ।
प्रगृह्यतिष्ठेत्परिवर्तितांगः
श्रीमत्स्यनाथोदितमासनं स्यात् ।

वाम जंघाके मूल में दक्षिणपाद को रखकर और जानु से बाहर वामपाद को हाथमें लपेटकर (पकड़कर) और वामभाग से पीठ की तरफ मुख को कर के जिस आसन में टिके वह मत्स्येन्द्रनाथ का कहा मत्स्येन्द्रासन होता है। इसी प्रकार दक्षिण जंघाके मूलमें वामपादादि क्रमसे करे (परन्तु यह आसन विना देखे नहीं आता) इस आसन के अभ्यास से सब रोग नष्ट हो जाते हैं कुंडलिनी जागृत होती है विन्दु की स्थिरता होती है और भी बहुत गुण हैं। समग्र आसनों में सिद्धासन सबसे श्रेष्ठ है केवल इसी आसन के अभ्यास से जिज्ञासु का कार्य सिद्ध होता है—इस आसनके अभ्यास करने से ७२००० बहत्तर सहस्त्रनाड़ियों का मल शुद्ध होजाता है—इसपर केवल कुम्भक का अभ्यास करनेसे मूलबंध, उड्डीयानबंध, जालंधरबंध यह तीनों कुछ कालमें स्वयं होजाते हैं और योगी को ये तीन मुख्य हैं॥

आत्मध्यायी मिताहारी यावद् द्वादशवत्सरान्
सदा सिद्धासनाभ्यासाद्योगी निष्पत्तिमाप्नुयात्

आत्माके ध्यान का कर्त्ता और मिताहारी (पुष्ट कारक मधुर आहार कट्वम्लादिवर्जित) होकर बारहवर्ष पर्यन्त सदैव

सिद्धासन का अभ्यास करनेसे योगी योग की सिद्धि को प्राप्त होता है (नासनं सिद्ध सदृशं) परन्तु आसन को दृढ़ लगा के एक प्रहर से कम न बैठे ॥

षट्क्रियाप्रकारः

जिस पुरुष को कफवात पित्त की अधिकता से शरीर में स्थूलता (मोटापन) हो उनको क्रिया करना आवश्यक है और जिनकी शरीरकृश (पतली) और वातादिक की अधिकता न हो उनको थोड़े दिन तक क्रिया करना चाहिये और जब कफादि विकारों की शुद्धता समझ पड़े तब प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये क्योंकि विना क्रिया किये नाड़ियोंके मल अर्थात् वातपित्त कफादि की शुद्धता नहीं होती और बिनामल शुद्धके प्राणायाम शुद्ध नहीं होता इससे क्रिया करना आवश्यक है ॥ किसी आचार्य के मत से प्राणायाम करते २ नाड़ियों के मल शुद्ध होजाते हैं परन्तु पहिले कुछ कालतक क्रिया करलेने से प्राणायाम प्रारम्भ करना उत्तम पक्ष है—और जो लोग क्रिया ही करते हैं प्राणायाम प्रत्याहारादि का क्रम न मालूम है न करते हैं उनका काल व्यर्थही समझना चाहिये—

मलाकुलासु नाड़ीषु मारुतो नैव मध्यगः
कथं स्यादुन्मनी भावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्

जब तक नाड़ी मलसे व्याप्त है तब प्राणवायु मध्यग अर्थात् सुषुम्ना मार्गसे नहीं चल सकता किन्तु मल शुद्धि होने पर ही सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करेगा और जब मल नाड़ियों में विद्यमान है तब उन्मनी भाव कहां ? पुनः मोक्षरूप कार्यकी सिद्धि कैसे हो सकती है ।

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाड़ीचक्रं मलाकुलम्
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः

संपूर्ण नाड़ियों का समूह जब मलसे शुद्धिको प्राप्त होता है तभी योगी प्राणवायु के संग्रहण (रोकने) में समर्थ होता है

मेदःश्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्
अन्यस्तु न चरेत्तानि दोषाणां समभावतः ॥

जिस पुरुष के मेदा और श्लेष्मा (कफ) अधिक हो वह पुरुष पहिले षट्क्रिया का अभ्यास करे और जिस को कफादि की अधिकता न हो वह दोषों की समानता से न करे ।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते ॥

धौति १ वस्ति २ नेति ३ त्राटक ४ नौलिक ५ (नौली) और कपाल भाति ६ यह छ क्रिया बुद्धिमानोंने योगमार्गमें कही है।

धौतिः

चतुरंगुलविस्तारं हस्तपंच दशायतम् ।
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ॥

चार अंगुल का चौड़ा और पंद्रह हाथका लम्बा वस्त्र, आर्द्र, (गीला) करके गुरुपदेश से धीरे २ ग्रास (निगले-खावे) करे ॥ अभ्यास करनेसे चार अंगुलसे द्वादश अंगुलतक चौड़ा और पंद्रह हाथसे तीस हाथ तक लंबा ग्रासकर सकता है बलिक इससे भी अधिक अभ्यासी लोग करते हैं परन्तु वस्त्र दर्दरा हो क्योंकि बारीक (सूक्ष्म-पतला) वस्त्र होनेसे उदरमें ग्रंथि पड़ जाती है

पीछे मुखसे निकालने में कष्ट होता है । कुछ अभ्यासी लोग वस्त्रको ग्रासकर पीछे एक बारही वमन कर देते हैं परन्तु इस में कुछ अर्थ नहीं ॥ इस धोती के करने से कासश्वास, प्लीहा, कुष्ट वीस प्रकार के और कफरोग नष्ट होते हैं ॥

वस्ति

नाभिदघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः ।
आधाराकुंचनं कुर्यात्क्षालनं वस्तिकर्म तत् ॥

नदी में जाके नाभिप्रमाण जलमें उत्कटासन से बैठे अ-र्थात दोनों पादके एंड़ी (पार्ष्णि) पर चूतड़ (नितंब) रखकर अंगुलियों के आधार से बैठना, पश्चात् गुदाको बार २ आकुञ्चन करे (सकोड़े) उससे जल भीतर जाता है उस जलको नौली कर्मसे चलाकर निकाल दे इसको वस्ति कर्म कहते हैं—और कोई बांस की नली कुछ गुदामें प्रवेश करके कुछ बाहेर रखके जल खींचते हैं ॥ परन्तु अभ्यासी (साधु) उदरमें जो दो नल हैं उन को प्रथम उठाने का अभ्यास करते हैं अनन्तर फिराने का अभ्यास करके उसी मार्गसे गुदाद्वारा जल खींचते और वहिर्गत करते हैं इस क्रिया के करने से गुल्म, प्लीहा, जलोदर, वातपित्त कफसे उत्पन्न रोग सब नष्ट होजाते हैं जठराग्नि प्रदीप्त होती है, मन प्रसन्न रहता है और भी बहुत गुण हैं (परन्तु इस क्रिया वाला पुरुष बहुधा करके रोगी देखने में आया—विरलाही को साध्य हुआ)

इससे शंख पछाड़ उत्तम होता है अर्थात् शौच (मलत्याग) के पहिले यथेष्ट जलको पीकर उदर को घुमावे (फेरे) पीछे मलत्याग करनेको जावे इसी तरह नित्य अभ्यास करते २ कुछ

काल में जल सहित मल गिर पड़ता है शरीर स्वयं विकार रहित स्वच्छ हो जाती है।

नेतिः

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते

बीता प्रमाण चिकना सूत्र ले नासिका से प्रवेश कर के मुखसे निकाले इसको सिद्धोंने नेती कही। बीस अंगुल सूतकी पतली रस्सी (रज्जु) १५-२०-२५ तंतु (सूत्र) प्रमाणकी बनाके (दृढ़ करने के वास्ते मोम लगा देवे) उसको नाक से छोड़ मुख से निकाल दो चार बार फेरे पुनः द्वितीय नासिका से करे— इस प्रकार नित्य करने से शिरके सब रोग नष्ट हो जाते हैं उपनेत्र (चश्मा) लगाना नहीं पड़ता—नासिकाके कफ नष्ट हो जाते हैं और प्राणायाम सरलता से होता है ॥ कोई २ एक नासिका से प्रवेश कर दूसरे नासिका से निकालते हैं।

त्राटकम्

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः
अश्रुसंपातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्

सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् एक छोटी (बारीक—चमकीली) वस्तु रखकर एकाग्र चितसे निश्चल दृष्टि (पलक को न फिराना) लगाकर जहांतक आंसु न गिरें तबतक देखे इसके अभ्यास करने से नेत्र के रोग सब नष्ट हो जाते हैं तंद्रा आलस्य आदि का नाश होजाता है और चित्तमें एकाग्रता प्राप्त होती है

नौलिः

अमंदावर्तवेगेन तुंदं सव्यापसव्यतः ।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्षते

उदरको वेग से जल भ्रमर की तरह सव्य अपसव्य (बाएं दाहिने) घुमावे इसको सिद्धोंने नौली कहा है और उदर में जो दो नल हैं उनको उठाके दक्षिण वाम भाग से फेरे—यह एक प्रकार है—इस नौली कर्म करने से अग्निदीपन और वात आदि दोष शमन होते हैं शरीर हलकी हो जाती है वायु सुषुम्ना में प्रवेश करता है चित्त का अवलंवन होता है यह कर्म हठयोग में श्रेष्ठ है

कपालभातिः

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी ॥

लोहकार की भस्त्रा (धौंकनी) के समान नासिकासे रेचक पूरक वार २ ओर से दक्षिण वाम क्रम करके करे इस क्रिया से कफ का नाश होता है वायुकी स्थिरता होती है शिरका भारी पन जाता रहता है

यह षट्क्रिया जो कही उसमें धौती, नेती, नौली अत्यंत उपयोगी है और एक ब्रह्मदंड—ब्रह्मदांतन नाम करके विख्यात है। सूत की रस्सी कनिष्ठिका सदृश स्थूल (मोट) सवा हाथ लंबी प्रमाण बनाके मोम लगावे अनन्तर क्रम २ से मुख में प्रवेश करे नाभि तक पहुंचावे दो चार बार प्रवेश करे निकाले-इसके करने से पित्त कफ और अन्य विकार भी मुख से गिर पड़ते हैं—अपान को उत्थान भी करता है और एक कुंजल

क्रिया करके विदित है मुखसे यथेष्ट जल पीकर थोड़े काल में बमन (उलटी) कर देवे इसमें अभ्यासी लोग घड़ा दो दो घड़ा (घट-कुम्भ-कलशा) जल पीजाते हैं पुनः बमन कर देते हैं बमन करने से पित्तादि विकार बहिर्गत हो जाते हैं। और एक गणेश क्रिया करके प्रकाशित है मलबहिर्गत होजाने पर गुदा में अंगुली प्रवेश कर चक्रों को मलसे स्वच्छ करे अर्थात् जलसे धोवे इससे बबासीर आदि गुदाके रोग नष्ट होजाते हैं—परन्तु कुछ लोग अंगुली प्रवेश करते २ हस्त प्रवेश करने लग जाते हैं और कुछ लोग मलबहिर्गत होने के पूर्वही से अंगुली ही द्वारा मल निकालते हैं। यह सब अज्ञानता है इससे रोगों की वृद्धि ही होती है अर्थ कुछ नहीं निकलता इस लिये यह क्रिया करना ही वृथा है "इन ऊपर लिखे हुये षट्क्रियादिकों में कई प्रकार के भेद हैं" परन्तु जो पुरुष क्रियाही करते २ दिन बिताते हैं उनका परिश्रम मात्रही फल है—यह गणेश क्रिया और बस्ति दोनों रोग के मूल हैं—इससे धोती, नेती, नौली वा ब्रह्मदांतन और शंखपछाड़ इनका अभ्यास करना ठीक है क्योंकि इतना रोग का भय इनमें नहीं है जैसा कि गणेशक्रियादिक में है। यह अभ्यास गुरू के सामने करना उत्तम है।

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्यकफदोषमलादिकः ।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्ध्यति ॥

धौती आदि षट्कर्म के करने से स्थूलता कफादिक मल विकार जिस पुरुषके दूर हो गये हों वह षट्कर्म के तदनन्तर प्राणायाम का अभ्यास करे तो अनायास अर्थात थोड़े परिश्रम से प्राणायाम सिद्ध होता है। यदि षट्कर्मोंको न करके प्राणा

याम़ही का अभ्यास करे तो बहुत परिश्रम करने से प्राणायाम सिद्ध होता है एतदर्थ क्रियाओं को अवश्य करना चाहिये

प्राणायाम प्रकारः

अथासने दृढ़े योगी वशी हितमिताशनः।
गुरूपदिष्टमार्गेण प्राणायामान्समभ्यसेत्।

इसके अनन्तर आसन की दृढ़तासे इन्द्रियां जीती हैं और मिताहार में तत्पर ऐसा योगी गुरूके उपदेश किये हुये मार्गसे प्राणायाम का अभ्यास करे। क्योंकि विना गुरू के पूरा काम नहीं होता।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्

प्राणवायुके चलायमान होने से चित्त भी चलायमान होता है और प्राणवायु के निश्चल होने से योगी स्थाणुत्व अर्थात स्थिर और दीर्घ काल तक जीता है तिससे प्राणवायु का निरोध अर्थात् प्राणायाम करे।

मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः
वाय्वग्निभ्यां यथालोहं ध्मातं त्यजति वै मलम्

श्वास जीतने वाले योगी का मन थोड़े ही दिनमें निर्मल होजाता है जैसे पवन अग्निसे तपित सुवर्ण मल रहित शुद्ध हो जाता है।

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रांतिस्ततो वायुं निरोधयेत्

जब तक प्राणवायु शरीर में स्थित है तभी तक जीवन कहा जाता है क्योंकि देह, प्राण के संयोगही को जीवन कहते हैं और देह से प्राण वायु का निकलना मरण कहा जाता है इससे जीवन के लिये प्राणवायु का निरोध करे

यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चित्तं निराकुलम्
यावद् दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत्कालं भयं कुतः

जब तक प्राण वायु शरीर में बद्ध है (रुकी) और चित्त विक्षेप रहित व सावधान है और दृष्टि भ्रूके मध्य में अन्तःकरण की वृत्ति है तावत्काल पर्यन्त कालसे किस प्रकार भय हो सकती है अर्थात् नहीं होती ।

खाद्यते न च कालेन बाध्यते न च कर्मणा
साध्यते न स केनापि योगी युक्तः समाधिना

योगी को कोई खा नहीं सकता है न कोई कर्म बाध सकता न कोई उसे साध सकता जो योगी समाधि से युक्त हैं॥ यह सब गुण प्राणायामही में है जो पुरुष शुद्धतासे प्राणायाम करता है उसकी वायु स्थिरता को प्राप्त होती है स्थिरता से चित्त अवलंबन होता है चित्त की एकाग्रता से समाधि होती है और समाधिही भुक्ति मुक्ति का स्थान है ।

कुम्भकभेदाः

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुंभकाः

प्राणायाम आठ प्रकार का है नाम—सूर्यभेदन १ उज्जायी

२ सीत्कारी ३ शीतली ४ भस्त्रिका ५ भ्रामरी ६ मूर्च्छा ७ प्ला-
विनी ८ ये आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम जानने ।

सूर्यभेदनम्

आसने सुखदे योगी बध्वा चैवासनं ततः ।
दक्षनाड्या समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनैः ॥
आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुंभयेत् ।
ततः शनैः सव्यनाड्यारेचयेत्पवनं शनैः ॥

पद्मासन वा सिद्धासन को योगी सुख से लगा के दहिनी नाड़ी (पिंगला) से बाहेर के पवन को धीरे २ पूरक करके नखाग्र से लेकर केशों पर्यन्त जब तक निरोध होय अर्थात् संपूर्ण शरीर में पवन रुक जाय तावत्पर्यन्त कुम्भक करै पुनः धीरे २ वामनाड़ी (इड़ा) से रेचक करे ॥ इस सूर्यभेदन प्राणायाम में जब २ पूरक किया जायगा तब २ दहिनी नाड़ी ही से किया जायगा और रेचक बामसे–यह इसका क्रम है ॥ परन्तु धीरे धीरे वायु की वृद्धि करे कारण कि एकवार पूर्ण कुंभक करने से रोगोत्पत्ति होती है इस प्रकार के प्राणायाम करने से मस्तक के समग्र रोग नष्ट होते हैं अस्सी प्रकारके वात रोगों को नाश करता है–उदर में जो कृमि पड़ गये हों उन को नष्ट करता है

उज्जायी

मुखं संयम्य नाड़ीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः ।
यथा लगति कंठा तु हृदयावधि सस्वनम् ।
पूर्ववत्कुंभयेत्प्राणं रेचयेदिडया ततः ।
श्लेष्मदोषहरं कंठे देहानलविवर्धनम् ॥

मुह को बन्द करके इड़ा पिंगला नाड़ी से शनैः २ इस प्रकार पवन का आकर्षण (खीचे) करे जिस प्रकार वह पवन कंठ से हृदयपर्यन्त शब्द करता हुआ लगै पुनः सूर्यभेदन के समान कुम्भक करके वाम नाड़ी से रेचक धीरे २ करे। इस प्रकारके प्राणायाम में कंठ से वायु खींचना वाम से छोड़ना—बारम्बार का भी यही क्रम है परन्तु मुख से वायु कभी भी न छोड़े,—मुखसे रेचक नहीं होता—इस प्राणायाम से कण्ठ के कफ दोष नष्ट होते हैं—जठराग्नि प्रदीप्त होती है शरीर के धातु रोग सब नष्ट होजाते हैं

सीत्कारी

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृंभिकाम्
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः।

दोनें ओठों के मध्य में जिह्वा लगा के शीत्कार करता हुआ पूरक करे यथेष्ठ कुंभक करके दोनें नासिका से स्वास बराबर निकालता हुआ रेचक करे ॥ इस प्रकार कुछ काल अभ्यास करने से वह पुरुष कामदेव के सदृश होजाता है अर्थात् कांतिमान सौन्दर्यता हो जाती है—देहका बल बढ़ता है क्षुधा तृषा आलस्य नहीं लगती अन्य भी बहुत गुण हैं

शीतली

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत्कुंभसाधनम्।
शनकैर्घ्राणरंध्राभ्यां रेचयेत्पवनं सुधीः॥

ओठ के बाहिर जिह्वा को निकाल कर पक्षी के चोंच सदृश करके धीरे २ वायु को आकर्षण (पूरक) करे पूर्ववत स-

हृश कुम्भक करके दोनों नासिका के छिद्रों से धीरे २ रेचककरे (छोडे) परन्तु दोनों नासिका के छिद्रोंसे वायु बराबर निकले इस प्राणायाम के करने से गुल्म, प्लीहा आदि रोग ज्वर, पित्त, क्षुधा, तृषा और सर्प आदि का विष इन सबों को शीतली प्राणायाम नष्ट करता है गर्म (उष्ण) प्रकृति वाले को अत्यन्त उपयोगी है ॥

काकचंच्वा पिबेद्वायुं संध्ययोरुभयोरपि ।
कुंडलिन्या मुखे ध्यात्वा क्षयरोगस्य शांतये ॥
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिस्तथा स्याद्दर्शनं खलु ।

कौवे की चोंच की तरह जीभ निकाल कर कुंडलिनी का ध्यान करता हुआ दोनों संध्याओं (प्रातःसायं) में जो वायु पान करता है उसका क्षयरोग नाश होजाता है—दूर का शब्द सुनाई देता है दूर की वस्तु देख पड़ती है और सूक्ष्म दर्शन होता है ॥

भस्त्रिका

सम्यक् पद्मासनं बध्वा समग्रीवोदरं सुधीः ।
मुखं संयम्य यत्नेन घ्राणं घ्राणेन रेचयेत् ॥
यथा लगति हृत्कंठे कपालावधि सस्वनम् ।
वेगेन पूरयेच्चापि हृत्पद्मावधि मारुतम्
पुनर्विरेचयेत्तद्वत्पूरयेच्च पुनः पुनः
यथैव लोहकारेण भस्त्रा वेगेन चाल्यते ॥

तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं धिया।
यथा श्रमो भवेद्देहे तदासूर्येण पूरयेत् ॥
विधिवत्कुंभकं कृत्वा रेचयेदिडयानिलम्।
वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥

सुखपूर्वक पद्मासन लगाकर जिसमें ग्रीवा उदर बराबर हों बुद्धिमान् पुरुष मुखको बन्द करके नासिका के द्वारा पूरक रेचक को करे—पूरक रेचक इस प्रकार, वो वेग से शब्द सहित करे कि हृदय, कंठ कपाल (ललाट—मस्तक—शिर) पर्यन्त लगे और हृदयके कमल पर्यन्त वायु का पूरक बारम्बार करे ॥ इसी प्रकार घ्राण वायु को वारं वार वेग से पूरक रेचक करे जैसे लोहकार भस्त्रा (धोंकनी) को चलाता है तैसे पवन को शरीर में बुद्धि से चलावे जब शरीर में श्रम (मेहनत—थकना) हो तब सूर्य नाड़ी से पूरक करे विधि पूर्वक कुम्भक कर के वाम नाड़ी से रेचक करे पुनः वाम से पूरक—दक्षिण से रेचक करे। इसका क्रम मतांतर से ऐसा भी है कि एक ही नासिका के छिद्र से पूरक रेचक दोनों जोर २ शब्द से करे अन्तमें इसी छिद्रसे पूरक कर यथेष्ठ कुम्भक करके दूसरे छिद्रसे रेचक करे— पुनः दूसरे छिद्रसे पूरक रेचक तदानुसार करके पूरक कुंभक रेचक करे ॥ दूसरा प्रकार ॥

एक छिद्र से पूरक करता जावे दूसरे छिद्र से रेचक—श्रम होजाने पर पूरक—कुंभक—रेचक तदानुसार लोम विलोम करे। इस भस्त्रिका के करने से वातपित्त कफ का नाश होता है जठराग्निकी वृद्धि होती अर्थात् क्षुधा लगती है और सर्वोपरि गुण इसमें यह है कि कुंडलिनी जो योग की जड़ (मूल) है

वह जागृत होतीहै सुषुम्ना नाड़ी जो कफसे ढकी हुई है शुद्ध होजाती है अर्थात् जो प्राणायाम का करने वाला भस्त्रा का अभ्यास करेगा उसको अवश्य प्राणायाम सिद्ध होगा ॥

शेष प्राणायाम—भ्रामरी, मूर्छा, प्लाविनी इन तीनों कुंभकों से योगी का कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता—किन्तु कौतुक मात्र हैं—जिनको अवलोकन करना हो वह योगके ग्रन्थों में देख ले अपरंच श्रेष्ठ प्राणायाम चन्द्रसूर्य नाड़ी का लोम विलोम ही है इस लोम विलोम प्राणायाम के करने से जन्मजन्मांतर के कल्मष नाश होजाते हैं ।

प्राणायामो भवत्येवं पातकेन्धनपावकः ।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा ॥

इस प्रकार के प्राणायाम करने से जैसे पातकरूपी काष्ठ को भस्म करने वाला अग्नि होता है तैसेही संसाररूपी समुद्र से तारने वाला बड़ापुल योगियोंने प्राणायाम को कहा है । इसी लोमविलोम प्राणायामके करनेसे अपान वायुका उत्थान होता है वह अपान प्राणवायु से मिलकर कुंडलिनी को जागृत करता है जिस के आधार जीव ब्रह्मरंध्र को गमन करता है अर्थात् इसी महामायाकी कृपासे समाधि लगती है और इस प्राणायामके दो भेद हैं एक पूरक रेचक कुम्भकयुक्त प्राणायाम—दूसरा केवलकुम्भक का प्राणायाम इनमें प्रथम पूरक रेचक युक्त कुम्भक का अभ्यास करे ॥ अनन्तर केवल कुम्भक का अभ्यास करे॥ जब पूरक रेचकके बिना कुम्भक दीर्घकाल पर्यन्त ठहरने लगे अर्थात् सुखपूर्वक यथेच्छा काल पर्यन्त वायु रुकी रहे तब वह प्रत्याहारादि का अधिकारी होता है और सिद्धियों की स्फूर्तियां (रंगत)

होने लगती हैं—चित्त में आनन्द ही आनन्द भाषित होता है और कहा है कि ॥

न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शक्तः केवलकुंभेन यथेष्टं वायुधारणात् ॥

उस केवल कुम्भक प्राणायाम करने वालों को तीनों लोक में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है जो इच्छानुसार वायु को धारण करता है—कारण कि जब शुद्ध कुम्भक होने लगता है तब अपान वायु का उत्थान हो कुण्डलिनी का उत्थान होता है इस महामाया के जागृत होने से सुषुम्ना नाड़ी कफ से रहित होजाती है जब सुषुम्ना नाड़ी शुद्ध हुई तब प्रत्याहारादि सहज ही में सिद्ध होते हैं और अभ्यास करते २ जबनाड़ी शुद्ध होती है तब वाह्य (बाहेर) में ये चिन्ह दर्शित होते हैं ॥

वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता
नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले ।
आरोगता विंदु जयोऽग्निदीपनं
नाड़ी विशुद्धिर्हठयोगलक्षणम्

शरीर दुबली (कृश) मुख में प्रसन्नता (कांति) नाद की प्रकटता अर्थात् नाद का शब्द शुद्ध सुनने में आवे—दोनों आंखों में निर्मलता, रोग रहित, बीर्यका स्तम्भन और क्षुधा की वृद्धि ये हठयोगी के चिन्ह बाहेर में नाड़ी शुद्ध होने पर दिखाई देते हैं ॥

समकायः सुगन्धिश्च सुकांतिः स्वरसाधकः ।

शरीर टेढ़ी भी हो तो सीधी हो जाती है—सुगन्ध होने लगता है—कांतिवान् और वायु का साधन होजाता है

प्राणायाम करने का क्रम

सूर्योदय से पहिले उठकर शौचदंतधावन से निवृत्त हो शुद्धता से भस्म धारण कर सुख से कोमल आसन पर बैठकर अर्थात् कुशासन मृगचर्म उसके ऊपर सुन्दर वस्त्रका आसन रख कर बैठे विधिपूर्वक संकल्प प्राणायाम के लिये कर के अनन्तर शेषजी का स्मरण करे यथा ॥

मणिभ्राजतफणासहस्रविधृतविश्वंभरा मंड-लायानंताय नागराजाय नमः ।

और गणेश गुरु आदिका स्मरण कर सिद्धों को नमस्कार करे यथा ॥

श्रीआदिनाथ, मत्स्येन्द्र, शाबरानंद भैरवाः ।
चौरङ्गी, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, बिलेशयाः ॥
मंथानो, भैरवो, योगी सिद्धिर्बुद्धश्च, कंथडिः ।
कोरंटकः, सुरानंदः, सिद्धपादश्च, चर्पटिः,
कानेरी, पूज्यपादश्च, नित्यनाथो, निरञ्जनः,
कपाली, बिन्दुनाथश्च, काकचंडीश्वराह्वयः ।
अल्लामः, प्रभुदेवश्च, घोड़ा, चोली, च टिंटिणिः
भानुकी, नारदेवश्च, खंडः, कापालिकस्तथा ।
इत्यादयोमहासिद्धा हठयोगप्रभावतः ॥
खंडयित्वा कालदंडं ब्रह्मांडे विचरन्तिते ॥

इन सिद्धों को नमस्कार कर पद्मासन लगाके प्राणायाम करे परन्तु मयूरासन, उग्रासनादि यह पहिलेही कर लेवे—सावधान हो चित्त को एकाग्र कर शरीर सीधा करके दृष्टि भ्रूमध्यमें करे-दहिने हाथ के अंगूठे से नासिका के दहिने छिद्र को दाब कर धीरे २ वाएं छिद्र से पूरक करे (वायुको चढ़ावे, खींचे, आकर्षण करे) और गुदा को आकुंचन करता हुआ क्रम २ से गर्दन को झुकाता जावे पूरक के अन्त में डाढ़ी (चिबुक) छाती से लग जावे—पुनः कनिष्ठिका अनामिका से वाएं छिद्र को दाबकर पूरक का चतुर्गुण (चौगुना) कुम्भक करे (स्तम्भन-रोके)अनन्तर अंगुष्ठ को छोड़ धीरे २ दहिने छिद्रसे पूरक के द्विगुण (दूना) संख्या प्रमाण उस रुकी हुई स्वास को रेचक करे (छोडे) और नासिके अधोभाग को क्रम २ से दावता जावे और गर्दन को उठाता जावे—पुनः उसी वायु को खंडित न करके उसी दक्षिण छिद्र से पूरक कुम्भक करके वाएं छिद्र से तदानुसार रेचक करे-पुनः वाम से पूरक कुम्भक रेचकादि यथा क्रम से वायु को न खंडित करता हुआ लोम विलोम प्रथम दिन छ वा दश प्राणायाम प्रणवध्वनि से करे ॥

रेचकपूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।
प्राणायामो भवेत् त्रेधा मात्राद्वादश संयुतः ॥

रेचक पूरक कुम्भक भेद करके प्रणव का उच्चारण होता हुआ वारहमात्रा प्रमाण तीन प्रकार का प्राणायाम होता है यह वारह वार प्रणव का जप करता हुआ पूरक और चतुर्गुण अर्थात ४८ का कुम्भक २४ का रेचक जानने और मतांतर से ।

इडया पिव पवनं षोडशभिश्चतुरोत्तर प-

ष्टिकमौदरकम् । त्यजपिंगलया शनकैः शनकै र्दशभिर्दशभिर्दशभिर्व्यधिकैः ॥

इड़ा (वामनाड़ी) से सोलहवार करके पूरक—चौंसठ वार से कुम्भक और पिंगला (दहिनी नाड़ी) से बत्तिस वार प्रणव करके रेचक होता है इसी क्रम से करता हुआ बढ़ाता जावे (वृद्धि करे) इसी तरह ८० अस्सी व ८४ चौरासी तक बढ़ावे और प्राणायाम चार काल करे—प्रथम तो सूर्य्योदय से पहिले आरंभ करे—द्वितीय मध्यान्ह में—तृतीय अभ्यास कर के तब सायं संध्या करे और चतुर्थ अर्द्धरात्र में—यह चार काल करना चाहिये । यथा ॥

प्रातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुंभकान् ।
शनैरशीतिपर्यंतंचतुर्वारं समभ्यसेत् ॥

यदि कदाचित् चार काल न साध सके तो त्रिकाल वा दो काल अवश्य करे । द्वादश मात्रा का प्राणायाम कनिष्ठ (छोटा) होता है इस प्राणायाम के करने से शरीर में प्रस्वेद (पसीना) आता है चौबीस मात्राका प्राणायाम मध्यम कहाता है इससे शरीर में कंप (हूमना-हिलना) होता है और छत्तीस मात्रा का प्राणायाम उत्तम होता है इससे वायु ब्रह्मरंध्र में ठहरती है अर्थात् पहुंचती है यथा-

प्रथमे द्वादशी मात्रामध्यमे द्विगुणा मता ।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ।
कनीयसि भवेत्स्वेदः कंपो भवति मध्यमे ।
उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निबंधयेत् ॥

जिसमें कुछ कम ४२ विपल काल (समय) लगे वह कनिष्ठ प्राणायाम—और मध्यम प्राणायाम ८४ विपल का और उत्तम प्राणायाम १२५ विपल का होता है—बंधपूर्वक अर्थात् जालंधरबंध-मूलबंध, उड्डीयान बंध, (यह कह आया हूं अर्थात् प्राणायाम के समय प्रथम गर्दन झुकाना छाती से लगाना, यह जालंधर बंध हुआ—गुदा का संकोच मूलबंध, और रेचक में नाभि का अधोभाग दाबना यह उड्डीयानबंध हुआ) सवा सौ विपल पर्यन्त प्राणायाम की स्थिरता होजाय तब प्राण ब्रह्मरंध्रमें चला जाता है—ब्रह्मरंध्र में गया प्राण जब २५ पल (१० मिनट) पर्यन्त ठहर जाय तब प्रत्याहार होता है और जब पांच घटिका (२ घं०) पर्यन्त ठहर जाय तब धारणा होती है और जब ६० घटी (२४ घं०) पर्यन्त ठहर जाय तब ध्यान होता है और जब प्राण ब्रह्मरंध्र में १२ दिन तक रुक जाय तब समाधि होती है ॥

पूरक जहां तक हो सके धीरे धीरे ही करना चाहिये कदाचित् वेग से हुआ तो कुछ दोष नहीं परन्तु रेचक तो कभी भी वेग से न करे क्योंकि इससे बलकी हानि होती है और रोग भी उत्पन्न होजाते हैं—यदि कुंभक प्रयत्न से स्थिर किया जाय तो बहुत गुण और बल देता है और शिथिल होने से अल्पगुण अर्थात् उपाधि करता है इस वास्ते प्राणायाम करने में शीघ्रता न करे यथा ॥

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायु रन्यथा हंति साधकम् ॥

जैसे जंगलके पशुसिंह—हाथी, वाघ आदि धीरे २ सेवा करने से वश हो जाते हैं तैसेही वायुकी सेवा करने से अर्थात्

शनैः २ प्राणायाम करने से वायु वशीभूत हो आनन्द देता है। और विपरीत अभ्यास अर्थात् शीघ्रता करने से साधककी हानि होती है। शुद्ध प्राणायाम करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं- शरीर हलकी रहती है-बल की वृद्धि होती है देहमें अरुणता (सुर्खी) आ जाती है और मन प्रसन्न रहता है शीघ्रता करने से, मिताहारके विगाड़नेसे, नाना प्रकार के रोग श्वास, खांसी मूर्छा, ज्वर, पसली में पीड़ा, मन्दाग्नि, रक्तविकार और नासिका का पर्दा भी फट जाता है ॥

लोम विलोम प्राणायाम के अनन्तर उज्जायी, सीत्कारी, भस्त्रिका का अभ्यास करे परन्तु भस्त्रा पद्मासन ही से करे- प्राणायाम होजाने पर नादानुसंधान करे अर्थात् कान में जो शब्द सुनाई देवे उसको एकाग्रचित से श्रवण करे (प्राणायाम करते २ स्वयं शब्द होने लगता है किसी को थोड़े ही दिन में और किसी को कालांतर में) और जब अन्न भोजन किया हुआ पचन हो जाब तब प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। प्रमाणसे भोजन करने वाले को छः घंटेमें अन्न पच जाता है

द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोये नैकं प्रपूरयेत्।
वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥

उदरके दो भाग अन्न से पूर्ण करे और एक भाग को जल से पूर्ण करे और चौथे भाग को वायु के चलने के लिये शेष रक्खे। परन्तु भोजन तर पदार्थ (स्निग्ध) करे जिससे शरीर में पुष्टता हो और किसी प्रकार का विकार न करे-भोजनके अनन्तर योगशास्त्र का अवलोकन करना चाहिये-इससे चित्त दूसरी ओर (तरफ) नहीं जाता क्योंकि कार्य की सिद्धि जभी

होती है जब अहर्निश (रात्रि दिन) एकही वस्तु पर लक्ष्य रहे—भोजन के पश्चात् इलायची लौंग का सेवन करे यदि तांबूल खाने की इच्छा हो तो चूना रहित खावे। लवण को योगी अवश्य त्याग करे—और प्राणायाम वहां करना चाहिये जहां किसी प्रकार का कर्ण में शब्द सुनाई न दे इसलिये कर्ण मुद्रा भी बना लेवे अर्थात कोमल कपडे में कपास (तूल-रुई) रखकर कानके छिद्र में कुछ चला जाय (प्रवेश) कुछ रह जाय ऐसा बनाके उसको डोरा से (सूत की पतली रस्सी-रज्जु) बांध लेवे प्राणायाम करते समय कानोंमें छोड़ लेवे इससे शब्द की रुकावट रहती है—प्राणायाम करते समय में जो कोई अचानक (एकाएकी) आके जोर से बोलने लगे वा लड़ने लगे तो उस समय जीधड़क (घबराना-व्याकुलता) उठता है बल्कि प्राण निकलने का भय रहता है इसलिये शब्दको अवश्य बचावे (ये सब नियम जो प्राणायाम विशेष करते हैं अर्थात समाधि—राजयोगके आपेक्षित हैं उनके लिये है) और जब उत्तम प्राणायाम विशेष करने की सामर्थ हो जाती है अर्थात् कुम्भक की स्थिरता होने लगती है उस समय में अपान वायु का उद्गार (उत्थान) होता है अपान का उत्थान (उठना) होने से आसन भी ऊपर को उठता है अर्थात् पृथ्वी को छोड़ देता है—इस करके योगी पद्मासन का अभ्यास करे क्योंकि पद्मासन छूटता नहीं दूसरे प्रकार का आसन उठने से छूट जाता है—आसन छूट जानेपर चोट लग जाती है गिर पड़ता है मूर्च्छा आजाती है—प्राण निकलनेका भय रहता है—परन्तु यह प्रसंग जब होगा जब ब्रह्मचर्य्य व्रत पालन अच्छी तरह से करैगा अर्थात् इन्द्रियों की एकाग्रता और वीर्यपात न होना यही

ब्रह्मचर्य का सारांश है-जिस पुरुष का स्वप्न में भी वीर्य्यपात न होगा और मिताहार युक्त प्राणायाम करता रहेगा उसको गुरु कृपासे अवश्य प्राणायाम सिद्ध होजायगा अर्थात् समाधि लगेगी-यह निश्चय है प्राणायाम करते समय शरीर टेढ़ी (बांकी-झुकी-हुई) न करे और प्राणायाम करने के अनन्तर जहां तक कि वायु की स्थिरता न होजाय तहांतक बोले नहीं, अभ्यास करते समय पूरक कुम्भक रेचक की गिनती (संख्या) न भूले और जो प्राणायाम में पसीना (प्रस्वेद) आवे तो प्राणायाम के अनन्तर उस प्रस्वेद को मर्दन करें इस से शरीर हलकी हो जाती है यथा ॥

जलेन श्रमजातेन गात्रमर्दनमाचरेत् ।
दृढ़ता लघुता चैव तेन गात्रस्य जायते ॥

मुद्रा प्रकरणम्

अतः अब मुद्राओं को लिखता हूं इन मुद्राओं के करने से योगी को शीघ्र समाधि की प्राप्ति होती है और सिद्धियों का अनुभव होने लगता है अन्य भी बहुल गुण हैं विशेष करके कुंडलिनी के उठाने का प्रयोजन है क्योंकि कुंडलिनी ही योग का सारभूत है जहांतक इसका उत्थान नहीं होता तहां तक समाधि नहीं हो सकती है

मुद्राओं के नाम

महामुद्रा महाबंधो महावेधश्च खेचरी ।
उड्यानं मूलबंधश्च बंधोजालंधराभिधः ॥
करणीविपरीताख्या बज्रोली शक्तिचालनम् ।
इदंहि मुद्रादशकं जरामरण नाशनम् ॥

महामुद्रा १ महाबंध २ महावेध ३ खेचरी ४ उड्डीयान ५ मूलबंध ६ जालन्धरबंध ७ विपरीत करणी ८ वज्रोली ९ और शक्तिचालन १० ये उक्त दशमुद्रा वृद्ध अवस्था और मरण को नष्ट करती हैं—आगे इनके भेद लिखता हूं।

महामुद्रा

पादमूलेन वामेन योनिं संपीड्य दक्षिणम्।
प्रसारितं पदं कृत्वा कराभ्यां धारयेद्दृढम्॥
कंठे बंधं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः।
यथादंडहतः सर्पो दंडाकारः प्रजायते॥

बाएं पांव की एंडी (पार्ष्णि) से गुदा और लिङ्ग के मध्यभाग को अच्छी तरहसे दबावे और दहिने पाव को सीधा फैला करके अंगूठे को दोनों हाथ की तर्जनी (अंगूठेके पासकी अंगुली) से दृढ़ (जोरसे) पकड़े और कंठमें जालन्धरबन्ध [आगे लिखूंगा] करके वायुको ऊपरही धारण करे (रोके) इस प्रकार अभ्यास करने से जैसे सर्प दंडाके मारने से सीधा हो जाता है ऐसेही कुंडलिनी जो मूलाधार में साढ़े तीन आवेष्ठन करके स्वयम्भूलिङ्ग में वेष्टित (लिपटी हुई) है वह जागृत होती है अर्थात् वेष्टन को छोड़ सीधी होती है तब इड़ा पिंगला दोनों नाडियों का प्रवाह वन्द होजाता है कारण कि कुंडलिनी के उत्थान से प्राण सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता है।

ततः शनैः शनै रेव रेचयेन्नैव वेगतः।
महामुद्रांचते नैव वदंति विबुधोत्तमाः।
चन्द्रांगे तु समभ्यस्य सूर्यांगेपुनरभ्यसेत्।
यावत्तुल्या भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत्॥

वह ऊपर धारण की हुई वायु को धीरे २ रेचन करे (छोड़े) वेग से नहीं क्योंकि शीघ्र छोड़ने से बल की हानि होती है तिससे ही देवताओं में उत्तम इसको महामुद्रा कहते हैं [अविद्या, स्मित, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप पांचों महाक्लेश और मरण आदि दुःख इस मुद्रा के करने से नष्ट हो जाता है अर्थात् महाक्लेशों के नष्ट करने से ही इस का देवताओं ने महामुद्रा नाम रक्खा है]

इस प्रकार चन्द्रांग (वामभाग) का अभ्यास करके सूर्याङ्ग (दक्षिण भाग) का अभ्यास करे और जितना काल चंद्रांग में लगे उतनाही काल सूर्यांग में लगाना चाहिये—चन्द्रांग सूर्यांग का भेद ऐसा है कि वामपाद का मूल योनि में दाबना दक्षिना फैलाना अंगूठे को तर्जनियों से पकड़ना इत्यादि यह चन्द्रांग है, दक्षिण पादका मूल योनिमें दाबना और वामपाद फैलाना इत्यादि सूर्यांग है—इस प्रकार अभ्यास करने वालेके गुदा और उदर के सब रोग नष्ट होते हैं।

महाबंध

पार्ष्णिवामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत्।
वामोरुपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा ॥
पूरयित्वा ततो वायुं हृदयं चिबुकं दृढम्।
निष्पीड्य वायुमाकुंच्य मनो मध्ये नियोजयेत्

बाएं पाद की एंड़ी को योनिस्थान (गुदा लिंग का मध्यभाग)में लगावे और वाम जंघाके ऊपर दक्षिण पाद को रख कर बैठे अनन्तर वायु को पूरण करके हृदय में डाढ़ी दृढ़ता से लगावे और योनि स्थान को आकुंचन (संकोच) करके मनको मध्य नाड़ी के विषे प्रवेश करे ॥

धारयित्वा यथा शक्ति रेचयेदनिलं शनैः ।
सव्यांगे तु समभ्यस्य दक्षांगे पुनरभ्यसेत् ॥

पुनः उस पूर्ण की हुई वायु को यथाशक्ति धारण करके धीरे २ वायु को रेचन करे इस प्रकार वाम अंग में अच्छीतरह अभ्यास करके दक्षिणांग में अभ्यास करे परन्तु जितना वाम भागमें अभ्यास करे उतनाही दक्षिणांगमें करे, इस मुद्राके अभ्यास से इड़ा पिंगला और सुषुम्ना का संगम भ्रूमध्य में होता है जहां शिवजीका स्थानरूप केदार है—वहांसे ब्रह्मरंध्र को जाना होता है ।

महावेध

महाबंध को करके अर्थात् वामपादकी एंड़ी योनिस्थान में और वामजंघा के ऊपर दक्षिण पाद को रख कर वायु को पूरक करके डाढ़ी (चिबुक) हृदयमें लगावे तदनन्तर—

समहस्तयुगो भूमौ स्फिचौ संताडयेच्छनैः ।
पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरति मध्यगः ॥

दोनों हाथों के तलको भूमि में अच्छी तरह स्थापित करके स्फिच (चूतड़—नितम्ब) को उठावे और छोड़े ऐसा धीरे २ अभ्यास करने से प्राण वायु इड़ा पिंगला को छोड़ सुषुम्ना में प्रवेश करती है। बिना इस वेध के किये महामुद्रा, महाबंधका फल निष्फल है इस लिये इसको अवश्य करना चाहिये परंतु इसको प्रहर २ में करना उचित है-इस मुद्रा के अभ्यास से ।

चक्रमध्यस्थितादेवाः कम्पयन्ति वायुताडनात्
कुंडल्यपि महामाया कैलासे साविलीयते ॥

शरीरस्थ चक्रमें जो गणेशादि देवता हैं वह इस वायु के ताड़न से कम्पित होते अर्थात् षट्चक्रंध्र(षट्चक्रों का छिद्र जिसमार्ग से जीव ब्रह्मरंध्रको जाता है यह जीव वायु रूपही है) को छोड़ देते हैं तब वायुका प्रवेश होता है॥ और कुंडलिनी ब्रह्मस्थानमें लय होती है इससे इसको अवश्य करना चाहिये और वृद्ध अवस्था में चर्म का सिकुड़ना, बालों का श्वेतपना, (सफेदी) और शिर का हिलना ये सब नष्ट हो जाते हैं और समग्र पाप का पुंज [समूह] दहन हो जाता है।

खेचरी

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोरंतर्गता दृष्टिर्मुद्राभवतु खेचरी ॥

कपाल के मध्य में जो छिद्र है उसमें उलटी हुई जिह्वा का प्रवेश हो जाय और भ्रुकुटि के मध्य में दृष्टि का प्रवेश हो जाय तो वह खेचरी मुद्रा होती है अर्थात् जिह्वा को कपाल छिद्रमें लगा के भ्रूमध्य का अवलोकन खेचरी मुद्रा होती है॥ इस मुद्रा का अभ्यासी पुरुष प्रथम जिह्वा को बढ़ावे अर्थात् जब प्रातःकाल दंतधावन करचुके पश्चात् जिह्वाके अग्रको दोनों हाथों की अंगुलियों से धीरे २ दुहे जैसे गौ दुही जाती है और वाम दक्षिणभाग में हिलावे और सेंहुड़ (स्नुहीपत्र) के पत्ते की तरह शस्त्र [लोहेका पत्तेकी तरह हथियार] बनवाकर आठवें २ दिन जिह्वाके नीचे शिराको वार (केश) प्रमाण छेदन करे और सैंधव,हरंड़े (हरीतकी,के चूर्णको उसी शिरासें लगाया करे-(कोई छेदन नहीं करते हैं योंही औषधियोंसे बढ़ाते हैं)इस प्रकार करनेसे छ महीनेमें जिह्वा बढ़कर उपयोगमें आने लगती

है अर्थात तालु मूल में जो छिद्र है जिससे अमृत झरा करता है वहां जिह्वा लगाने से जिह्वा में अमृत आने लगता है—बिना जिह्वा बढ़ाये (बर्धन) तालु मूल में नहीं पहुंच सकती परीक्षा यह है कि जब अपनी नासिका में जिह्वा निकाल के लगाने से सुखपूर्वक स्पर्श करे तब जिह्वा छिद्र में अवश्य पहुंचेगी—तब जिव्हा को उलट करके उस तालु मूल में जहां इड़ा—पिंगला और सुषुम्ना का तीन छिद्र है (मतांतरसे पांच छिद्र है) तहां लगावे—जिव्हा के अग्र से घर्षण (घिसे) करता रहे—तब उस सुषुम्नाके छिद्र से जो अमृत झरा करता है वह प्राप्त होगा—प्रथम अभ्यास में उसका स्वाद ॥

सक्षारा कटु काम्लदुग्धसदृशी मध्वाज्य तुल्यातथा ।

क्षार पुनः कटु (मिर्चकी तरह) पुनः अम्ल (खट्टा) पुनः दूध की तरह स्वाद पश्चात् मधु (सहत) अनन्तर घृत की तरह स्वाद मिलने लगता है—जब घृत का स्वाद आने लगा तब जानना चाहिये कि खेचरी मुद्रा सिद्ध होगई—जब खेचरी मुद्रा सिद्ध होगई हो तो ।

न रोगो मरणं तंद्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा ।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥
पीड्यते न स रोगेण लिप्यते न च कर्मणा ।
बाध्यते न स कालेन योमुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥

उसको रोग मरण और अंतःकरण की तमोगुणी वृत्तिरूप तंद्रा और निद्रा क्षुधा (भूख) तृषा (प्यास) और चित्त की

तमेगुणी अवस्था रूप मूर्छा रोग ये सब नहीं होते, वह रोग से पीड़ित नहीं होता, न कर्मसे लिप्त होता—और न कालसे बांधा जाता है। अपरंच इस मुद्रा का बड़ा महात्म्य है इससे अधिक महात्म्य किसी का भी नहीं है—इस मुद्रा के सिद्ध होने से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है वह केवल इसी मुद्राके अभ्यास से ही जीवन्मुक्त होता है—उसके चेष्टे पर कांति सदा बनी रहती है—शोकको नहीं प्राप्त होता, सर्पादिक का विष नहीं प्रवेश करता है (विशेष देखना हो तो योगके ग्रन्थों को अवलोकन करो)

उड्डीयानं

उदरे पश्चिमतानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत्।
उड्डीयानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्ग केशरी॥

पेटमें नाभि के ऊपर भाग को और निचले भाग को इस प्रकार तान (आकर्षण) करे कि जिसमें वे दोनों भाग पृष्ठ में लग जांय—यह नाभि के ऊर्ध्व अधोभाग का तान उड्डीयान्—नाम का बंध होता है और यह बंध मृत्युरूप हस्ती का सिंहरूप नाशक है।

मूलबन्धः

पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुञ्चयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूल बंधोऽभिधीयते॥

एंड़ी से योनिस्थान (गुदा लिंग के मध्य) को अच्छी तरह से दबाकर गुदा का संकोच करे और अपान वायुको ऊपर को आकर्षण करे यह मूलबंध कहाता है। दूसरा प्रकार ऐसा

है कि वामपादके एंडी को योनिस्थान में दृढ़ता से लगा के दक्षिणपाद के एंड़ी को लिंगके ऊपर लगावे ॥ तीसरा। वामपादके एंड़ी को गुदा में दृढ़ता से लगा के दहिने पांव की एंड़ी को लिङ्ग और वृषण के बीच में लगावे इसको मूलबंध कहते हैं। इस मुद्रा का बारम्बार अभ्यास करने से अपानवायु का उत्थान होता है--अधोगामी अपान जब ऊर्ध्वगामी होकर अग्निमंडल में पहुंच जाता है उस समय अपान वायु से ताड़ितकी हुई जो त्रिकोणाकार नाभिके नीचे जठराग्निकी शिखा [ज्वाला]है वह बढ़ जाती है–तब अग्नि और अपान ये दोनों बढ़ी हुई ज्वालासे ऊर्ध्वगतिसे प्राणमें पहुंच जाते हैं तिसप्राण वायु के समागम से देह में उत्पन्न हुई जठराग्नि अत्यन्त प्रज्वलित होजाती है उस अग्निके अत्यन्त दीपन से भली प्रकार तप्यमान हुई कुंडलिनी शक्ति सुखपूर्वक जागृत हो जाती है अनन्तर सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में संचार करती है–सुषुम्ना के मध्य में कुंडलिनी का संचार यही समाधि का लक्षण है इस करके मूलबंध का करना अत्यन्त उपयोगी है–परन्तु इसमें यथार्थ अभ्यास न करने से रोग भी होता है ॥ परीक्षा यह है कि मल बकरी (अजा) की तरह होने लगे तब जानना चाहिये कि मूलबंध ठीक नहीं करते बना और जब मल बराबर हो क्षुधा लगती जाय, शरीर हलकी बनी रहे, मन प्रसन्न रहा करे तब ठीक जानना–समग्र योगके कामों में शीघ्रता न करे शीघ्रता ही रोग का मूल है।

जालंधरबन्ध

कंठमाकुंच्यहृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढ़म् ।
बंधो जालंधराख्योऽयं जरामृत्यु विनाशकः ॥

कंठ के बिल[छिद्र]का संकोच करके चार अंगुल के अन्तर पर हृदय के समीप में डाढ़ी को दृढ़ता से स्थापन करें यह जालंन्धरबंध कहाता है यह बंध वृद्ध अवस्था और मृत्यु का नाश करने वाला है। इस बंधके करने से जो चन्द्रामृत झरता है उसके नाभिमें जो जठराग्नि स्थित है वह ग्रहण कर लेती है—वह रुक जाता है और वायु का कोप नही होता अर्थात् अन्य नाड़ियों में वायु का गमन नही होता और केवल इसही बंध का अभ्यास करने से समाधि भी होती है परन्तु इस में गुरु लक्ष्य का काम है—ये तीनें अर्थात् उड्डीयानबंध मूलबंध और जालंधरबन्ध योगाभ्यासीके वास्ते बडे उपयोगी हैं मुख्य काम इन्हींसे होता है

विपरीत करणी

भूतले स्वशिरो दत्वा खेनयेच्चरणद्वयं ।
विपरीतकृताचैषा सर्व तन्त्रेषु गोपिता ॥

साधक अपने शिरको भूमिमें स्थापित करके दोनों चरणों को ऊपर आकाश में निरालम्ब स्थिर करे—यह विपरीतकरणी मुद्रा सब तंत्रों में छिपा हुआ है (अर्थात् प्रकाश नहीं करे तो योगी मृत्यु को जीत लेता है)—इसमें भी अमृत की धारा रुक जाती है और क्षुधा की वृद्धि अधिक होती है—इस मुद्रा का अभ्यासी घृत-दुग्ध अच्छी तरह सेवन करे और प्रातःकाल ही अभ्यास करें-इससे बालोंका पकना और वृद्धापन दूरहोताहै

वज्रोली

स्वेच्छया वर्तमानोऽपि योगोक्तैर्नियमैर्विना ।
वज्रोलीं यो विजानाति सयोगीसिद्धिभाजनम् ॥

तत्रवस्तु द्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यस्य कस्यचित्।
क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी ॥
यत्नतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्रकंदरे ।
शनैः शनैः प्रकुर्वीत वायुं संचारकारणात् ॥

जो योगाभ्यासी वज्रोली मुद्रा को अपने अनुभव से जानता है वह योगी योगशास्त्र में कहे हुए नियमों के विना अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार करता हुआ भी अणिमा आदि सिद्धियों का भोक्ता है। उस वज्रोली की सिद्धिमें जिस किसी निर्धन पुरुष को दुर्लभ जो दो वस्तु है उनको मैं कहता हूं—उन दोनों में एक दूध है और दूसरी वशमें रहनेवाली स्त्री है। लिङ्गके छिद्र में वायुके संचार करनेके लिये उत्तम नाल से धीरे २ यत्न पूर्वक फूत्कार को करे

वज्रोली का क्रम ऐसा है कि सीसे की शलाई (शलाका) लिंग में प्रवेश करने के योग्य चौदह अंगुल की बनवा कर लिंग में प्रवेश करने का अभ्यास करे पहिले दिन एक अंगुल दूसरे दिन दो तीसरे दिन तीन अंगुल प्रवेश करे इसी क्रम से वृद्धि करता हुआ बारह अंगुल तक प्रवेश करे इतने में मार्ग शुद्ध हो जाता है पुनः उसी प्रकार की चौदह अंगुल की ऐसी सलाई बनवावे जो दो अंगुल टेढ़ी हो और ऊर्ध्वमुखी हो परन्तु यह शलाका पोपली रहे इसको भी बारह अंगुल लिंग के छिद्रमें प्रवेश करे-टेढ़ा और ऊर्ध्वमुख जो दो अंगुल मात्र है उसको बाहेर रक्खे पुनः सुनारके अग्निधमनी[धौंकनी] के नाल की तरह नालको लेकर उस नालके अग्रभाग को लिङ्ग में प्रवेश

क्रिये बारह अंगुलके नाल का टेढ़ा और ऊर्ध्वमुख जो दो अं-गुल है उसके मध्यमें प्रवेश करके फूत्कार करे (फूंके] तिससे अच्छी तरह लिङ्गके मार्गकी शुद्धि होती है—तब वायुके खींचने छोड़ने का अभ्यास करे पुनः लिंग से जल आकर्षण करने का अभ्यास करे,जलके आकर्षणकी सिद्धि होनेपर दूध के खींचनेका अभ्यास करे—दूध सिद्ध होने पर तैल का अभ्यास करे; यह सिद्ध होने पर पारद(पारा)के खींचने का अभ्यास करे जब पारदको शुद्ध रीति से आकर्षण करने की शक्ति हो गई तब ॥

नारी भगे पतेद्बिंदुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत् ।
चलितं च निजं बिंदुमूर्ध्वमाकृष्यरक्षयेत् ॥

नारी के भग में पड़ते (गिरते) हुए बिन्दु (वीर्य) के अ-भ्यास से ऊपर को आकर्षण करे अर्थात् पड़ने से पूर्व ही ऊपर को खींच ले यदि पतन (गिरना) से पूर्व बिन्दु का आकर्षण न हो सके तो पतित हुआ बिन्दु का आकर्षण करे। चलित हुआ अपना बिन्दु और स्त्री का रज इन दोनों का आकर्षण ऊपर को करके रक्षा करे अभिप्राय यह है कि स्त्री से भोग करते समय अपने वीर्यको आकर्षण किये रहे जब स्त्री का रज पतित होने को हो तभी अभ्याससे रज को खींच ले-यदि अ-पनाही बिन्दु गिरने को हो तो तत्कालिक ही अपानवायुको उत्थान करके आकर्षण शक्तिसे ऊपर को आकर्षण करले जिस योगी का अभ्यास सिद्ध होजाय तो वह पुरुष सब सिद्धियोंका अधिकारी हो जाता है और दीर्घसे दीर्घ काल पर्यन्त जीता रहता है॥ यदि इसका अभ्यास शाक्त लोग करें तो बहुत ही उत्तम है क्योंकि यह भोगसे ही मुक्ति कहते है॥

एवं संरक्षयेद्बिन्दुं मृत्युं जयति योगवित् ।
मरणं बिंदु पातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ॥

जो योगी बिन्दु की भली प्रकार रक्षा करता है वह योग का ज्ञाता योगी मृत्यु को जीतता है क्योंकि बिन्दु के पतन से ही मरण और बिन्दु के रक्षा से ही जीवन होता है इस से बिन्दु की रक्षा अवश्य करना चाहिये—परन्तु वर्तमान काल में सब लोगोंने बिन्दुपात(वीर्य गिराना, कामदेव) करनाही श्रेष्ठ समझा है यह कैसी भूल है

शक्तिचालनम्

कुटिलाङ्गी कुंडलिनी भुजङ्गी शक्तिरीश्वरी ।
कुंडल्यरुन्धतीचैते शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥
उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात् ।
कुंडलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥

कुटिलांगी १ कुंडलिनी २ भुजंगी ३ शक्ति ४ ईश्वरी ५ कुंडली ६ अरुन्धती ये सात शब्द पर्याय वाचक हैं ॥ जैसे पुरुष किवाड़ों के ताला को बल करके कुंजी (ताली—चाभी) से खोलते हैं तिसी प्रकार योगी भी हठयोग के अभ्यास से कुंडलिनी मुद्राके द्वारसे अर्थात मोक्षके दाता सुषुम्ना के मार्ग को भेदन करता है। यह कुंडलिनी मूलाधार से ऊपर योनिस्थान जिसका पीछे मुख है उसी स्थानमें कन्द (लिंग इन्द्रियसे थोड़ा ऊपर) है उसी स्थानमें सर्पाकार सोती है इसको साधक भली प्रकार यत्न करके उत्थान (उठावे) करे ॥

सतिवज्रासने पादौ कराभ्यां धारयेद्दृढम् ।

गुल्फ देश समीपे च कंदं तत्र प्रपीडयेत् ॥

वज्रासन लगा के अनन्तर गुल्फों के कुछेक ऊपर भाग में चरणों को हाथों से दृढ़ पकड़ कर नाभि के अधोभाग में कन्द को पीड़ित करे अर्थात् नाभि के अधो भाग में एंड़ी की चोट धीरे २ लगावे अनन्तर उसी वज्रासन (सिद्धासन) से स्थित हो भस्त्रा को करे इससे कुंडलिनी जागृत होती है–प्रातः सायं काल में आधा २ प्रहर इस क्रम से अभ्यास करने से ४४ चवालिसवें दिन में कुंडलिनी का उत्थान होता है परन्तु साधक मिताहार साधन–ब्रह्मचर्यव्रत परित्याग न करे ॥ यह शक्तिका उत्थान प्राणायाम करते २ जब अपान वायु का उत्थान होता है तब यह ईश्वरी आपही उठती है ॥ (इसकी उपाय महात्माओंके पास कुछ भिन्न ही रहती है परन्तु संकेत वश नहीं लिखा गया) यह कुंडलिनी मूलाधारमें जो स्वयम्भूलिंग है उस लिङ्गमें साढ़े तीन आवेष्टनकरके लिपटी हुई है और जहां उस का मुख है वही ब्रह्मरंध्र का छिद्र है विना इसके उठे योग की सिद्धि नहीं होती क्योंकि यह ईश्वरी ही योग का मूल है ।

येन संचालितः शक्तिः स योगी सिद्धि भाजनम्

जिस योगी ने शक्ति चलायमान करली है वह योगी अणिमादि सिद्धियों का पात्र हो जाता है ॥ इस के उत्थान होने से ७२००० सहस्र नाड़ियों का मल शुद्ध होता है–जो पुरुष इस महामायाके भेदको जानता है वह सिद्ध पुरुष कहाता है इसमें संदेह नहीं यह कुंडलिनी कमल नाल के तंतु (सूत) सदृश है और अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाश युक्त है इसके उत्थान होनेसे शरीर हलकी मालूम होती है कुछ नशा सा बना रहता है ॥ इसके उठाने का उपाय प्राणायाम और मुद्रा है अथवा भावना

किया करै भावना करते २ अनुभव होने लगता है—परन्तु इस की समझ सद्गुरु के समीप ही से ठीक होती है । इन दश मुद्राओं का कथन मैं थोड़ेही में लिखा हूं—जिनको विशेष देखना हो वह योग के ग्रंथों को देखें ॥

प्रत्याहारः

चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथा क्रमम्
यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥
यथा तृतीयकालस्थो रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम् ।
तृतीयाङ्गस्थितो योगी विकारं मानसं तथा ।

गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पांच विषय हैं इनमें घ्राण जिव्हा, चक्षु, त्वक्, कर्ण इन पांच ज्ञानेन्द्रियों के कर्म होते हैं अर्थात् उक्त ज्ञानेन्द्रियों के उक्त विषय क्रम से हैं आसन प्राणायाम सिद्ध करके जिस इन्द्रिय का जो विषय है उसे दूसरे के समीप भावना कर क्रमशः धीरे २ त्याग करना अर्थात् इन्द्रिय से उसके विषय का अनुभव करके पुनः इन्द्रियों को विषय से अलग करना प्रत्याहार होता है । दिनके प्रातः मध्यान्ह, सायं ये तीन भाग से तीन काल होते हैं जैसे सायं काल में सूर्य अपनी कांति को क्रमसे हरण करता है—ऐसेही योगी भी तीसरे अंग (आसन १ प्राणायाम २ प्रत्याहार) प्रत्याहारमें मानस विकार में मन के विषय संबन्ध से छुटावे ॥

अङ्गमध्ये यथाङ्गानि कूर्मः संकोचयेद्ध्रुवम् ।
योगी प्रत्याहरे देव मिन्द्रियाणि तथात्मनि ॥

जैसे कछुआ अपने शिर पैर आदि अङ्गों को संकोच कर

अपने ही भीतर छिपा लेता है ऐसेही योगी भी इन्द्रियों को विषयों से रोक कर आत्मामें उनकी वृत्तियों को आसक्त करे॥ वायु के २५ पल अर्थात् १० मिनट तक निर्विघ्न ठहरनेको प्रत्याहार कहते हैं ॥ जब वायु निर्विघ्न ठहरती है तब चित्त चलायमान किसी प्रकार से नहीं होता–यह निश्चय है और दूसरे के देखने से वा अपने ही देखने से–बाहेर में ऐसा मालूम होता है कि वायु नहीं है अर्थात् पेट(उदर) किंचित भी फूलता पचकता नहीं–जब इतना अधिकार हो गया तब जानना चाहिये कि अब वायु ऊपरको गमन करेगी परन्तु इसमें सद्गुरु का प्रयोजन है। यह क्रम १२ दिनके,समाधि लगनेका है।

यामभात्रं यदा पूर्णं भवेदभ्यासयोगतः
एकवारं प्रकुर्वीत तदा योगी च कुम्भकम्
दंडाष्टकं यदा वायुर्निश्चलो योगिनो भवेत्
स्वसामर्थ्यात्तदांगुष्ठ तिष्ठेद्वातुलवत्सुधीः ॥

जब एक बार में पूर्ण एक प्रहर तक योगी के अभ्यास से कुम्भक स्थिर रहेगा अर्थात् आठ घड़ी तक योगी का वायु निश्चल रहे तब वह अपने सामर्थ्य से अंगुष्ट मात्र के बल से अचल अबोधवत् खड़ा रह सक्ता है अभिप्राय प्रत्याहारसे यह है कि जिस पुरुष को प्रत्याहार साध्य हो जायगा तो उस के चित्त की वृत्ति स्थिर हो जायगी और वायु का निरोध सुख पूर्वक हो जायगा–एक प्रहर वायु स्थिर होने से सिद्धियों के अनुभव होने लगते हैं–

धारणा

आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः।

प्रत्याहारेण संपन्नो धारणां च समभ्यसेत्

आसन प्राणायाम प्रत्याहार इनका अभ्यास स्थिर करके धारणा का अभ्यास करे ।

हृदये पंचभूतानां धारणा च पृथक् पृथक् ॥
मनसो निश्चलत्वेन धारणा साभिधीयते ।

हृदय में मन, प्राण वायु को निश्चल करके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश संज्ञक पंचभूतों को अलग २ धारण करना धारणा कहाती है ।

यापृथ्वीहरितालहेमरुचिरापातालकारान्विता
संयुक्ताकमलासनेनहिचतुष्कोणाहृदिस्थापिनी
प्राणांस्तत्रविलीयपंचघटिकं चिंतान्विताधारये
देषास्तम्भकरीसदाक्षितिजयंकुर्याद्भुवोधारणा

जो पृथ्वी हरिताल अथवा सुवर्ण के समान सुन्दर पीतवर्ण अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा सहित चौकोना करके वीचमें(लं) बीज युक्त है इस प्रकार पृथ्वी तत्वको हृदय में ध्यान करके भावना करे चित्त सहित प्राणों को लीन करके पांच घटी तक स्तम्भन करने वाली धारणा होती है इस धारणा का सर्वदो अभ्यास करने से पृथ्वी तत्व अपने वश में होजाता है । एवं कुन्द पुष्प के समान श्वेतवर्ण अधिष्ठातृ देवता विष्णु सहित अर्धचंद्राकार के मध्य में (वं) वीज अमृत रूप जल तत्व को विशुद्ध चक्रमें(कंठ)ध्यान करके भावना करे चित्त और प्राणों को लीन करके पांच घटी पर्यन्त धारणा करना यह जलस्तंभन करने वाली वारुणी धारणा है इस के अभ्यास करने से काल कूट विष भी शरीर में प्रवेश नहीं करता । बीरबहूटी (इन्द्र-

गोप) के समान रक्तवर्ण अधिष्ठातृ देवता रुद्रसहित त्रिकोणाकार के मध्य में (रं) बीज तेजो रूप अग्नितत्व को तालुस्थान में भावना करे चित्त प्राणों को लीन करके पांच घटी पर्यन्त वैश्वानरी धारणा होती है इसके अभ्यास से योगी अग्नि का जीतने वाला होता है ॥ कज्जल के पुंज समान अति नील वर्ण अधिष्ठातृ देवता ईश्वर सहित वर्तुलाकार (गोला) के मध्य में (यं) बीज वायुतत्व को भ्रूमध्य में भावना करे चित्त सहित प्राणों को लीन करके पांच घटी पर्यन्त वायुतत्व की धारणा होती है इसके अभ्यास से योगी को आकाश में गमन-करने की शक्ति होती है। निर्मल जल के समान वर्ण अधिष्ठातृ देवता सदाशिव सहित वर्तुलाकार के मध्य में (हं) बीज आकाशतत्व को ब्रह्मरंध्र में भावना करे चित्त सहित प्राणों को लीन करके पांच घटी पर्यन्त स्थिर रहना यह नभो धारणा मोक्ष रूपी द्वार के खोलने में चतुर हैं इसके अभ्यासले मोक्ष द्वार खुल जाता है ॥

कर्मणा मनसा वाचा धारणाः पञ्चदुर्लभाः ।
विहायसततं योगी सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥

कर्म (अनुष्ठान) से मन के चिन्तन से वचन शास्त्राज्ञा के प्रमाण मानने से निरूपण करके पाचों धारणाओं को जो स्थिराभ्यास करता है वह समस्त दुःखों से निवृत होजाता है— धारणा से यह अभिप्राय है कि प्रत्याहार अर्थात १० मिनट (२५ पल) तक जब वायु स्थिर होने लगी तब गुरूपदेशमार्गसे वायु को ऊपर चढ़ाना इसका नाम धारणा है और धारणा पांच घटी का होता है।

धारणा पंच नाड़ीभिर्ध्यानं च षष्टिनाडिभिः ।

जब पांच घटी तक वायु की स्थिरता हो तब उक्त क्रम से भूतों की भावना होती है और इसमें बहुत प्रकार का विघ्न होता है अर्थात् जिस समय चित्त एकाग्र कर के धारणा का अभ्यास योगी करने लगता है तब उसी काल में यक्षिणियां (डाकिनी) अपने रूप को दर्शित कर मोहित करती हैं अथवा भय देती हैं (इनका रूप अन्तर दृष्टिसे ही मालूम होता है परन्तु योगी इनके रूप को न देखे और न भय माने) और पांच घटी तक जब वायु ठहरने लगती है तब योगी को आनन्द मालूम होता है सिद्धों का दर्शन होता है—वायु को ऊपर चढ़ाने का मार्ग मालूम होने लगता है—इतना अभ्यास जब दृढ़ हो गया तब ध्यान (चक्रों के भेदन) का अधिकारी होता है वह ध्यान ६० घटी (२४ घं) का होता है

ध्यानम्

स्मृत्येव सर्वचिन्तायां धातुरेकः प्रपद्यते ।
यच्चित्तेनिर्मलाचिन्ता तद्धिध्यानं प्रचक्षते ॥

(स्मृ) यह धातु चिन्ता सामान्य वाचक है सो चित्त में योग शास्त्रोक्त प्रकार से निर्मलांतर करके आत्मतत्व का स्मरण करना ध्यान कहाता है ॥

अन्तश्चेतोवहिश्चक्षुरधःस्थाप्य सुखासनः ।
कुण्डलिन्याससमायुक्तं ध्यात्वामुच्येतकिल्विषात्

पद्मासन लगाय शरीर सीधा कर आधारादि चक्रों में अन्तःकरण (मन) लगाय नासिका के अग्रमें दृष्टि वा भ्रूमध्यमें लगाके निश्चल हो कुंडलिनी सहित ध्येय वस्तु का ध्यान करना इस से योगी सब पापोंसे मुक्त होजाता है

आधार चक्रम्

कुलाभिधंसुवर्णाभं स्वयम्भू लिङ्ग सङ्गतम् ।
द्विरण्डो यत्र सिद्धोस्ति डाकिनी यत्र देवता ॥
तत्पद्ममध्यगायोनिस्तत्रकुण्डलिनीस्थिता ।
तस्याऊर्ध्वेस्फुरत्तेजः कामवीजंभ्रमन्मतम् ॥
यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारं विचक्षणः ।
तस्यस्याद्दार्दुरीसिद्धि भूमित्यागक्रमेण वै ।
परिस्फुरत्वादि सान्त चतुर्वर्णं चतुर्दलम् ॥

यह कमल का कुल नाम है सुवर्ण के समान कांति और स्वयम्भूलिङ्गसे युक्त है उस पद्म में द्विरण्ड नामक सिद्ध और डाकिनी अधिष्ठातृ और गणेश देवता हैं उस पद्म के मध्य में योनि है उस योनिमें कुंडलिनीकी स्थिति है और उस कुंडलिनी के ऊपर तेजस्वरूप कामवीज भ्रमण(घूमना-फिरना)करता है जो बुद्धिमान पुरुष इस मूलाधार पद्म का सर्वदा ध्यान करते हैं उनको दार्दुरी वृत्ति अर्थात् मेंडककी तरह उछलना सिद्ध होता है और क्रम से भूमिको त्यागके ऊपर उठता है—यह पद्म परम प्रकाशमान व से स तक अर्थात् व श ष स ~~और~~ चार वर्ण चार दल करके शोभित है। इस मूलाधार के ध्यान करने से कांतिमान, जठराग्नि की वृद्धि, आरोग्यता मंत्र सिद्धि इत्यादिकों का लाभ होता है।

द्वितीयं तु सरोजञ्च लिङ्गमूले व्यवस्थितम् ।
वादिलान्तं च षड्वर्णं परिभास्वर षड्दलम्

जो ध्यान करताहैउसके समीप कामसे पीड़ित सुन्दर स्त्री अप्सरा आदि मोहित होजाती हैं (यह विघ्न करने वाली हैं साधक इधर लक्ष्य कदापि भी नहीं देवे यदि समाधि की इच्छाहै तो)॥

ज्ञानञ्चाप्रतिमं तस्य त्रिकालविषयम्भवेत् ।
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छयाखगतां व्रजेत् ॥

उस साधक को अपूर्व ज्ञान उत्पन्न होता है—तीनोंकाल (भूत, वर्तमान, भविष्य)का ज्ञान होता है दूर का शब्द सुनाई देता है—दूर की वस्तु दिखाई देती है और अपनी इच्छा से आकाश में गमन करने को समर्थ होता है—सिद्धों के दर्शन होते हैं और अन्य भी बहुत गुण है ।

विशुद्धचक्रम्

कंठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नाम पञ्चमम् ।
सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वरसंयुतम् ॥
छगलाण्डोऽस्ति सिद्धोत्र शाकिनीचाधिदेवता ।

कंठ स्थान (गला) में जो पांचवा विशुद्ध नामक कमल है वह सुवर्ण के समान कांति से शोभित होता है और अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः यह षोड़श स्वर षोड़श दल युक्त है—छगलांड सिद्ध, शाकिनी देवी अधिष्ठात्रि और जीवात्मा देवता इस स्थान में विराजमान हैं ॥

ध्यानं करोति यो नित्यं सयोगीश्वरपंडितः ।
किन्त्वस्य योगिनोऽन्यत्र विशुद्धाख्ये सरोरुहे
चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्यानिधेरिव

जो पुरुष इस चक्र का नित्य ध्यान करता है वह योगीश्वर पंडित है और इस विशुद्ध पद्म में उस पुरुष को चारों वेद रहस्य सहित समुद्र के रत्नवत् प्रकाश होते हैं इस चक्र के ध्यानमें बहुत गुण हैं

आज्ञाचक्रम्

आज्ञा पद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकं ।
शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी

भ्रुकुटी के बीच में जो आज्ञापद्म (कमल) है उस में हं क्षं दो बीज हैं सुन्दर श्वेतवर्ण दो पत्ते हैं उस स्थानमें महाकाल नामक सिद्ध, हाकिनी देवी अधिष्ठात्रि और परमात्मा देवता है ॥

शरच्चन्द्रनिभंतत्राक्षर बीजं विजृंभितम्
पुमान्परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वानावसीदति ।
तत्र देवः परंतेजः सर्वतन्त्रेषु मंत्रिणः
चिन्तयित्वा परांसिद्धिं लभते नात्रसंशयः ॥

उस आज्ञा पद्म के बीचमें शरदचंद्र के समान परम तेज चंद्रबीज अर्थात् ठं बीज विराजमान है इसके ज्ञान होने से परमहंस पुरुष को कभी नहीं कष्ट होता इस परमतेज का प्रकाश सब तन्त्रों करके गोपित है इसके चिन्तन मात्र से अवश्य परम सिद्धि प्राप्त होती है ॥

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते ।
ज्ञातव्यं तत्पदं तुर्यं तत्रकालो न विद्यते ॥

दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में कल्यान रूप आत्मा का स्थान है उस शिव या आत्मा में मन लीन होता है अर्थात मन की वृत्ति का प्रवाह शिवाकार हो जाती है वह तुर्यपद अर्थात जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति से परे चौथा पद जानना उस पद में मृत्यु नहीं है ॥

सुषुम्ना मेरुणायातो ब्रह्मरंध्र यतोऽस्ति वै ।
ततश्चैषा परावृत्त्या तदाज्ञापद्मदक्षिणे ।
वामनासापुटं याति गंगेतिपरिगीयते ।
तदाकारपिंगलापि तदाज्ञा कमलोत्तरे ।
दक्षनासापुटेयाति प्रोक्तास्माभिरसीति वै ॥

सुषुम्ना नाड़ी मेरुदंड द्वारा जहां ब्रह्मरंध्र है उस स्थानमें गई है और इड़ा नाड़ी सुषुम्ना के ऊपर आवृत से आज्ञाचक्र के दक्षिणभाग होके वामनासा पुट को गई है इसको गङ्गा कहते हैं और इड़ा नाड़ी के समान पिंगला भी चक्रके वामभाग से दहिने नासा पुट को गई है इससे हे पार्वती इस पिंगला को हमने असी कहा है अर्थात् गङ्गा और असी के मध्य में जैसा मेरा काशी क्षेत्र है तद्वत् आज्ञा चक्रमें मेरा निवास है

आज्ञापद्ममिदं प्रोक्तं यत्रदेवो महेश्वरः ।
पीठत्रयं ततश्चोर्ध्वं निरुक्तं योगचिन्तकैः ॥
तद्बिन्दुनादशक्त्याख्यं भालपद्मव्यवस्थितम्

इस स्थान में महेश्वर देवता है इसको आज्ञापद्म कहते हैं योग चिन्तक लोग कहते हैं कि इस पद्मके ऊपर पीठत्रय की

स्थिति है अर्थात् नाद विंदु और शक्ति यह तीनों इस भाल पद्म में विराजमान हैं और यही त्रिवेणी संगम कहाता है।

इडागंगापुराप्रोक्ता पिंगला चार्कपुत्रिका।
मध्या सरस्वतीप्रोक्ता तासां संगेतिदुर्लभः॥

इड़ा गङ्गा और पिंगला यमुना है मध्य में सुषुम्ना सरस्वती है यह त्रिवेणी संगम कहा गया है इसका स्नान अति दुर्लभ है।

सिताऽसिते संगमे यो मनसा स्नानमाचरेत्
सर्वपापविनिर्मुक्तो यातिब्रह्मसनातनम्।

यह इड़ा पिंगला के संगममें साधक मानसिक स्नान करने से (ध्यान करना यही मानसिक स्नान है) सब पाप से मुक्त होके सनातन ब्रह्ममें लय होजाता है—

मृत्युकालेप्लुतं देहं त्रिवेण्याः सलिले यदा॥
विचिन्त्ययस्त्यजेत्प्राणान्सदामोक्षमवाप्नुयात्

मृत्यु के समय में साधक जो यह चिन्तन करे कि मेरो शरीर त्रिवेणी के सलिल (जल) में मग्न है अर्थात् सावधान हो ध्यान करे तो उसी क्षण प्राण को त्याग के मोक्ष को प्राप्त होगा—इस स्थान में श्रीसदाशिवजी ज्योतिस्वरूप कर के लिंग रूपी विराजमान हैं—जो कोई इस चक्र का ध्यान दृढ़ करलेवे उसको त्रैलोक्यमें कुछ दुर्लभ नहीं है यह भ्रूमध्यही समाधिका रूप है—इसका माहात्म बहुत है॥

चक्रों का ध्यान २४ घंटे (एक दिन रात्र) तक अर्थात् इतनी देर तक वायु ठहरे उसको ध्यान कहते हैं—(इसीको चक्रभेदन

कहते हैं)–धारणाके अनन्तर गुरुमुख द्वारा जब वायु ऊपर के चक्रों को भेदन करती हुई आज्ञाचक्र को उलंघन करके ब्रह्म-रंध्र को प्राप्त होती है उसी को समाधि कहते हैं तहां क्षुधा तृषादि सब नष्ट होजाते हैं

समाधि निरूपणम्

धारणा पंचनाडीभिर्ध्यानं च षष्टिनाडिभिः ।
दिनद्वादशकेनस्यात्समाधिःप्राणसंयमात् ॥

प्राण वायुके ब्यापार को पांच घड़ी तक रोकना धारणा कहाती है ऐसे ६० घटी का ध्यान और बारह दिन रात्रिपर्यन्त प्राण वायु के रोकने से समाधि कहाती है

सलिले सैंधवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः ।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधि रभिधीयते ।
यदा संक्षीयते प्राणा मानसं च प्रलीयते ॥
तदासमरसत्वं च समाधिरभिधीयते ।
तत्समं च द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः ॥
प्रनष्टसर्वसंकल्पः समाधिःसोऽभिधीयते ॥

जैसे सैंधव लवण जल का संयोग होने से जल के संग एकता को प्राप्त होजाता है तिसी प्रकारसे आत्मा में धारण किया हुआ मन आत्माकार होने से आत्मरूप को प्राप्त हो जाता है उसी आत्मा मन की एकता को समाधि कहते हैं ॥ जब प्राणके प्रवाह की गति और मनका भी लय हो जाता है उस समय में हुई जो समरसता (निर्द्वंदता) उस को समाधि

कहते हैं । जीवात्मा और परमात्मा इन दोनों की एकता रूप को ही समता कहते हैं और उस समय नष्ट हुए हैं संपूर्ण संकल्प जिसमें उसको समाधि कहते हैं—समाधि में स्थितपुरुष को काल नहीं भक्षण करता ।

बाध्यते न स कालेन लिप्यते न स कर्मणा ।
साध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना

जब योगी समाधि में स्थिर होजाता है तब उसको मृत्यु की भय नहीं, होती अर्थात् उस पर काल का वश नहीं चलता, पाप पुण्य रूप कर्मबंधनों में लिप्त नहीं होता और कोई विषय वासना में लगाय नहीं सकता, न कोई उसे यंत्र मंत्र आदि से साध सकता है क्योंकि उस समाधिके समय क्लेश की निवृत्ति होतीहै "पातंजलिः" ततःक्लेशकर्मनिवृत्तिः॥

न गन्धं न रसं रूपं न च स्पर्शं ननिःस्वनम्
नात्मानं च परस्वं च योगी युक्तः समाधिना ।

समाधि में स्थित योगी को गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन पांच विषयों को बोध नहीं होता—वह अपना पराया कुछ नहीं जानता—जीवात्मा परमात्मा को एकही मानता है अर्थात् समाधि में जब साधक प्राप्त भया तब उस को आनन्द ही आनन्द भासता है वहां द्वैतपक्ष नहीं मालूमहोता अर्थात अद्वितीय हो जाने से क्षुधा तृषादि, मानाऽपमान सुख दुःख शीत उष्णादि का भान नहीं रहता क्योंकि ये सब बाधक द्वैत के हैं। आज्ञाचक्रसे ब्रह्मरंध्र में जाने का दो मार्ग है वह गुरु मुखसेही प्राप्त होने योग्य है अत्यन्त गुप्त होने से

लिखना उचित नहीं समझा जाता एतदर्थ नहीं लिखा गया।

अतऊर्ध्वंदिव्यरूपं सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्डाख्यस्य देहस्य बाह्येतिष्ठति मुक्तिदम्
कैलाशो नामतस्यैव महेशो यत्रतिष्ठति।
अकुलाख्योऽविनाशीच क्षय वृद्धिविवर्जितः।

तालु के ऊपर भागमें सुन्दर सहस्रदल का कमल है यह कमल मुक्ति का दाता ब्रह्मांड रूपी शरीर के बाहर अर्थात् शरीर के ऊपर अन्त में स्थित (शिखा के पास) है इसी कमल को कैलाश कहते हैं इसी स्थान में महेश्वर की स्थिति है यह ईश्वर निराकुल, अविनाशी और क्षय वृद्धि रहित है।

तस्माद्गलितपीयूषं पिबेद्योगी निरन्तरम्
मृत्योर्मृत्युं विधायाशु कुलंजित्वा सरोरुहे।
अत्र कुंडलिनीशक्तिर्लयंयाति कुलाभिधा
तदा चतुर्विधासृष्टि लीयतेपरमात्मनि॥

सहस्रदल कमल से जो अमृत स्रवता (गिरता-झरता) है उसको योगी निरन्तर पान करता है वह योगी मृत्यु को जीत करके चिरंजीवी हो जाता है और यहीं सहस्रदल कमल में कुलरूपा (आधार चक्र में रहने वाली) कुंडलिनी शक्ति लय हो जाती है तब यह चतुर्विधि सृष्टि भी परमात्मा में लय हो जाती है।

यज्ज्ञात्वाप्राप्यविषयं चित्तवृत्तिर्विलीयते।
तस्मिन्परिश्रमं योगी करोति निरपेक्षकः॥

यह सहस्त्र दल कमलके ध्यान होनेसे चित्त वृत्ति का लय हो जाता है अर्थात् वासना का नाश हो जाता है इस लिये इसके ध्यानार्थ योगी कांक्षा (कामना) रहित होके अभ्यास करे।

अभिप्राय यह है कि जो समाधि जिसको राजयोग कहते हैं उसके प्राप्त्यर्थ अवश्य परिश्रम करना चाहिये क्योंकि इसी से सायुज्यमुक्ति और कालकी वंचना होती है और इसीसेही आठ सिद्धियों का सहज में लाभ अवश्य होता है। सिद्धियोंके नाम अणिमा १ महिमा २ गरिमा ३ लघिमा ४ प्राप्ति ५ प्राकाम्य६ ईशता ७ वशिता ८ यह आठ सिद्धियां हैं ॥ "निरूपण"

अणिमा १--इच्छा होते ही परमाणु रूप होजाना (महिमा२) आकाशवत् स्थूल (मोटा, बड़ा) होना (गरिमा ३) लघु पदार्थ का भी पर्वत (पहाड़) आदि के समान भारी हो जाना (लघिमा ४) पर्वतादि के समान भारी हो के हलका होजाना (प्राप्ति ५) संपूर्ण पदार्थों के समीप पहुंचना जैसे कि भूमि पर स्थित योगी अंगुली के अग्रसे चन्द्रमाका स्पर्श कर ले (प्राकाम्य ६) जल के समान भूमि में प्रवेश हो जाय और निकल आवे--(ईशता७) पांचों महाभूत और उनसे उत्पन्न भौतिक पदार्थ इनकी उत्पत्ति और प्रलय पालन की सामर्थ्य हो। (वशिता८) भौतिक पदार्थोंको अपने आधीन करना--ये आठ सिद्धियां और परकाया प्रवेशादि निधियों का योगाभ्यासी इच्छानुसार पर्यन्त आनन्दानुभव लेता हुआ त्रैलोक्य में विचरता सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है और यदि योग पूर्ण रीतिसे सिद्धि भी न भया तोभी जीवन पर्यन्त मर्यादापूर्वक सुखी, रोगसे रहित, कांति युक्त रहता है और अन्तमें स्वर्गोंका सुख भोग करके पुनः वासनानुसार उत्तम कुल भाग्यमान के यहां या ऋषि-

वत् कुल में जन्म ले अभ्यास करता है

अभिप्राय यह है कि योग का अभ्यासी किसी प्रकार से नष्ट नहीं होता—अन्य उपासनाओं से यह उपासना अति उत्तम श्रेयस्कर है। सकामी निष्कामी दोनों को उपयोगी है इसका माहात्म बन्दन करने योग्य नहीं है अर्थात।

यंयं श्चिन्तयते कामं तंतं प्राप्नोति निश्चितम्

इससे अवश्य इस विद्या को किसी सद्गुरु के समीप स-मक्ष करके अभ्यास करना चाहिये—इसका अभ्यास गृहस्थाश्रमी सुख से करे परन्तु ऋतु कालाभिगामी हो। यह ब्रह्म-रंध्र की बन्दना ग्रन्थों में बहुत प्रकार से वर्णन किया है पर-न्तु मैं विस्तार भय से नहीं लिखा क्योंकि जो पुरुष अभ्यास करेगा उसी को आनन्द प्राप्त होगा।

नादानुसंधानं

नादानुसंधानसमाधि भाजां
योगीश्वराणां हृदिवर्धमानम्।
आनन्दमेकं वचसावगम्यं
जानाति तं श्रीगुरुनाथ एकः॥

अनाहत ध्वनि रूप जो नाद है उसके स्मरणसे चित्त की एकाग्रता रूप जो समाधि है उसके कर्ता जो योगीश्वर हैं उन के हृदय में बढ़ता हुआ बाणी से परे जो प्रसिद्ध मुख्य आनन्द होता है वह श्रीयुत गुरुस्वामी ही जानते हैं अर्थात यह नादानुसंधान गुरूसे ही प्राप्त होता है।

कर्णौपिधाय हस्ताभ्यां यं शृणोतिध्वनिं मुनिः।
तत्र चित्तंस्थिरीकुर्याद्यावत्स्थिरपदं व्रजेत्॥

योगी हाथों के अंगूठों को कर्णोंके छिद्रों में लगाकर जिस अनाहतध्वनि (शब्द) को सुनता है उस ध्वनिमें स्थिरची चित्त को तबतक स्थिरकरै जब तक तुर्यावस्थारूप स्थिरपदको प्राप्त न हो "विजिती भवती हतेनवायुः सहजो यस्य समुत्थितः प्रणादः" जिस योगी के देह में स्वाभाविक नाद भली प्रकार उठता है वह वायु को जीत लेता है ॥

श्रूयते प्रथमाभ्यासेनादो नानाविधो महान्।
ततोऽभ्यासेवर्धमाने श्रूयते सूक्ष्म सूक्ष्मकः ॥

प्रथम अभ्यास में अनेक प्रकारका महान् नाद सुना जाता है और उसके अनन्तर अभ्यास के होने पर सूक्ष्म २ (बारीक) शब्द सुना जाता है ॥ यथा ॥

आदौजलधिजीमूत भेरीझर्झरसंभवाः ।
मध्येमर्दलशङ्खोत्था घंटाकाहलजास्तथा ॥
अन्ते तु किंकिणी वंश वीणाभ्रमरनिःस्वनाः ।
इति नानाविधानादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः॥

प्रथम २ जब प्राण वायु ब्रह्मरंध्र में गमन करती है तब उस समय में समुद्र, मेघ (बद्दल का मधुर शब्द) भेरी (नगाड़ा) झांझ के शब्द समान शब्द सुने जाते हैं और मध्य में अर्थात् सुषुम्ना में प्राणवायु की स्थिरता के अनन्तर मृदंग, शंख इनके समान और घंटा और हलनाम के जो वाजे हैं इनके शब्द के समान शब्द सुने जाते हैं अनन्तर प्राण का ब्रह्मरंध्रमें स्थिरता के अन्त में किङ्किणी—वांसुरी वीणा भंवरों के शब्द की तरह

सुने जाते हैं इस प्रकार देहके मध्य में अनेकों प्रकार का शब्द सुनाई देता है ॥

महतिश्रूयमाणेऽपि मेघभेर्यादिकेध्वनौ ।
तत्रसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नादमेव परामृशेत् ॥

मेघ भेरी आदिका जो महान शब्द है उसके समान शब्द सुनने पर भी उन शब्दों में सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जो नाद है उसका चिन्तन करे ॥ इसी प्रकार एक से एक का सूक्ष्म सनता आवे सुनते २ मन नाद रूप हो जाता है अर्थात् किसी प्रकार की वासना उस समय मनमें नहीं आती संकल्प रहित हो जाता है इसी को लय कहते हैं ॥

मकरंदंपिबन्भृङ्गो गंधंनापेक्षते यथा ।
नादासक्तं तथाचित्तं विषयान्नाहि कांक्षते ॥

जैसे पुष्पों के रस का पान करता हुआ भ्रमर पुष्प के गन्ध की इच्छा नहीं करता है तैसेही नाद में आसक्त हुआ चित्त भी विषयों की इच्छा नहीं करता। यह निश्चय है इससे सावधान होकर प्रथम चित्त को एकाग्र करके नाद को श्रवण करे पुनः वह नाद आपही मनको बांध लेता है ॥

नादोऽतरङ्गसारङ्ग बन्धने वागुरायते ।
अन्तरङ्गकुरङ्गस्य वधेऽव्याधायतेऽपि च ॥

जैसे व्याध मृगबंधन के जाल में मृग को हतता है इसी प्रकार अपने में आसक्त हुए मन को नाद भी हतता है अर्थात मन के जो संकल्प विकल्पादिक धर्म हैं वे नष्ट होजाते हैं ॥ और जैसे घोड़ा मेष में (खूंटा-लोहदंड जहां बांधा

जाता हो) बांधनेसे चंचलता का परित्याग करदेता है ऐसे नाद के श्रवण से मन। और जैसे गंधक में पारा घोटने से एक रूप हो जाता है अर्थात् पारा नष्ट हो जाता है इसी प्रकार पारद रूपी मन, गन्धक रूपी नाद में नष्ट हो जाता है और जैसे काष्ट में जलाई हुई अग्नि ज्वाला को त्याग कर काष्ठ के संग शांत हो जाती है तिसी प्रकार नाद में चित्त लगाने से चित्त अपनी चंचलता को छोड़ लय हो जाता है॥ यथा

काष्ठेप्रवर्तितोवन्हिः काष्ठेन सह शाम्यति।
नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सहलीयते ॥

इससे योगी नाद अवश्य श्रवण करे क्योंकि नाद के श्रवण से ही समाधि हो जाती है॥

यत्किंचिन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा।
यस्तत्वांतोनिराकारः स एव परमेश्वरः ॥

जो कुछ नाद रूप से सुना जाता है वह शक्ति ही है और जिसमें तत्वों का लय होता है वह निराकार परमेश्वर है॥

सदानादानुसंधानात्क्षीयंते पापसंचयाः।
निरंजनेविलीयेते निश्चितं चित्त मारुतौ ॥

सदैव नाद के सुननेसे पापोंके समूह नष्ट होजाते हैं और निर्गुण चैतन्य में, चित्त और पवन ये दोनों अवश्य लीन हो जाते हैं—जब लीन हो गये तब बाहेर के शंखादि शब्द सुनाई नहीं देते—इसीको उन्मनी अवस्था (समाधिका रूप) कहते हैं अभिप्राय यह है कि नाद के सुनने से चित्त अवश्य लय हो

जाता है चित्त की स्थिरताही उत्तम तप, उत्तम पुण्य, और उत्तम विद्या आदि कहा जाता है अर्थात् जितने उपाय वेद शास्त्र पुराणादि में कहा है उसका सारांश चित्त की स्थिरता का है इससे उचित है कि चित्तको एकाग्र करे ।

योगसिद्धिलक्षणम्

फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम्।
द्वितीयं श्रद्धयायुक्तं तृतीयं गुरुपूजनम् ॥
चतुर्थं समताभावं पंचमेन्द्रियनिग्रहम् ।
षष्ठं च प्रमिताहारं सप्तमं नैव विद्यते ॥

योग सिद्धि का प्रथम लक्षण यह है कि मैं जो गुरुपदेशसे योगाभ्यास करता हूं वह अवश्य सिद्ध होगा ऐसा विश्वास करे दूसरे श्रद्धायुक्त, तीसरे गुरुकी सेवामें रहे, चौथे प्राणीमात्रमें समता (दुष्टबुद्धि न करना) रक्खे, पांचवे इन्द्रियोंको विषयोंसे रोके, छठे मिताहार भोजन करे (दोभाग अन्नसे, तीसरा जलसे और चौथा भाग उदर में वायुके संचारार्थ रक्खे यह मिताहार है) यह छ लक्षण योगसिद्धि के कहे हैं सांतवा नहीं है ॥

गोधूमशालियवषाष्टिकशोभनान्नं
क्षीराज्यखंडनवनीतसितामधूनि ।
शुंठीपटोलकफलादिकपंचशाकं
मुद्गादि दिव्यमुदकं चयमीन्द्रपथ्यम् ॥

गेहूं, चावल, सांठी चावल (यह दो महीने में होता है) और पवित्र अन्न (श्यामाक--नीवार आदि) दूध, घी; खांड,

मक्खन (लोनी–नैनू) मिसरी–मधु (सहत) सोंठ–परवलआदि सुन्दर भाजी, मूंग, अरहर निर्दोष जल, यह योगियों के पथ्य हैं। इनके सेवन से रोग नहीं होता इससे योगाभ्यासी को उचित है कि भोजन का नियम अवश्य करे क्योंकि जैसा शुद्ध अन्न खाया जायगा तैसेही बुद्धि होगी।

योगविनाशकः

आम्लरूक्षंतथातीक्ष्णं लवणं सार्षपं कटुं।
बहुलं भ्रमणंप्रातः स्नानं तैलं विदाहकम् ॥
स्तेयहिंसाजनद्वेषश्चाहंकारमनार्जवम्।
उपवासमसत्यं च मोहं च प्राणिपीडनम्।
स्त्रीसङ्गमग्निसेवांच बह्वालापंप्रियाप्रियम्।
अतीव भोजनं योगी त्यजेदेतानि निश्चितम्

खट्टा [इम्ली आदि) रूखा तीक्ष्ण (मिर्च आदि) लवण, सरसों, कडुआवस्तु (तीत) बहुत घूमना, प्रातःकाल का स्नान, शरीर में तेल लगाना–सोने (सुवर्ण) की चोरी, जीवों की हिंसा, सब से द्वेष अहङ्कार, किसी से प्रेम न रखना, उपवास (लंघन) करना, झूठ बोलना, दूसरे को पीड़ा देना, स्त्री सङ्ग, अग्नि का सेवन, प्रिय अप्रिय बहुत बोलना, बहुत भोजन करना–यह सब योगी अवश्य त्याग दें ये योग में विघ्न करने वाले हैं॥

मठलक्षणम्

अल्पद्वारमरंध्रगर्तविवरंनात्युच्चनीचायतं

सम्यग्गोमयसांद्रलिप्तममलंनिःशेषजंतूज्झितं
बाह्येमंडपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्ठितम्
प्रोक्तंयोगमठस्य लक्षणमिदंसिद्धैर्हठाभ्यासिभिः

जिसका छोटा तो द्वार हो, जिसमें गवाक्षादि छिद्र गढ़े बिल न हों, न बहुत ऊंचा नीचा विस्तार हो, जो भली प्रकार चिकने गोमय से लिपा हो, जो स्वच्छ हो, जिसमें कोई जीवन हों–जिसके बाहर मंडप बेदी कूप हों–शोभित हो और जिसके चारों तरफ भीत (पनाह) हो यह योग मठ का लक्षण हठयोग के अभ्यास कर्ता सिद्धोंने कहा है। मतान्तर से ऐसा भी है कि बगीचे के बीचमें सुन्दर मन्दिर हो चित्रादिक की रचना हो, तीर्थ नदी, पर्वत, वृक्ष समीपमें हों किसी सत्पुरुष का सत्सङ्ग हो इत्यादि लक्षण कहा है।

सुराज्ये धार्मिकेदेशे सुभिक्षेनिरुपद्रवे ।
धनुःप्रमाणपर्यन्तंशिलाग्निजलवर्जिते ॥
एकांते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना ।

जहां सुन्दर राज्य हो, धर्मवान देश हो, सुख से भिक्षा मिलती हो, किसी प्रकार चोर व्याघ्रादिक का भय न हो, उस स्थान में चार हाथके प्रमाण में पत्थल, अग्नि, जल को छोड़ एकांत में योगी छोटासा मठ बनाकर रहे । सुराज्ये धार्मिक इत्यादि से यह अभिप्राय है कि सुराज्य में प्रजा भी दयालु और धर्मात्मा होती है इस से भिक्षा दूध घी आदि अच्छी तरह मिलती है । और उसको कोई सताता नहीं ।

अभ्यासकालेप्रथमे शस्तंक्षीराज्यभोजनम् ।

अभ्यास के आरम्भ में योगी को यथेष्ट घी दूध चाहिये कारण कि बिना घी दूध के यह प्राणायामादि का अभ्यास शुद्ध नहीं होता और धर्मात्मा का अन्न भी चित्त में विकार नहीं करता ॥

एवं विधे मठेस्थित्वा सर्वचिन्ता विवर्जितः ।
गुरूपदिष्टमार्गेण योगमेव समभ्यसेत् ॥

संपूर्ण चिन्ताओंसे रहित इस प्रकार के मठमें स्थित होकर गुरु के उपदेश किया हुआ मार्ग से योगाभ्यास करे

युवावृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितोदुर्बलोऽपिवा ।
अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतंद्रितः ॥

युवा (जवान) हो या वृद्ध (बुढ़ापा) हो या अति वृद्ध हो या रोगी हो या दुबला हो (कमजोर) अभ्यास से ही सिद्धि को प्राप्त होता है परन्तु संपूर्ण योग के अंगों में आलस्य न करै अर्थात् आसन प्राणायामादि का क्लेश न मानके अभ्यास करता जावे ॥ क्योंकि अभ्यास ही मुख्य है ॥

क्रियायुक्तस्य सिद्धिःस्यादक्रियस्य कथं भवेत् ।
न शास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते ॥

योग अंगोंके करनेमें जो युक्त उस पुरुषको ही योग की सिद्धि होती है और जो योगके अंगों को नहीं करता अर्थात् राज योग २ ही को वका करता है अभ्यास करने की क्रिया को नहीं करता उस को योग की सिद्धि नहीं होती—यदि

कोई ग्रंथही देखते २ सिद्धि चाहे तो उसको योग कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ता है

पीठानि कुंभकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि ॥

पूर्वोक्त आसन और अनेक प्रकार के कुम्भक प्राणायाम दिव्य करण (विपरीतकरणी) महामुद्रा आदि ये संपूर्ण हठ-योगके अभ्यास में राजयोग के फल पर्यन्त करने योग्य हैं अ-र्थात् ये राजयोग में प्रकृष्ट उपकारक हैं क्योंकि प्रकृष्ट जो उपकारक वही कारण होते हैं। अभिप्राय यह हैकि हठयोग ही राजयोगके प्राप्त्यर्थका सुगम उपाय है-प्रथम ऋषि लोग वायु हीका साधनकर समाधिस्थ होते रहे जिस से वाक्सिद्धि होती रही सब राजा लोग भय करते रहे—परन्तु अब तो भाइयोंको व्यायाम (कुश्ती दंड मुद्गर आदि) ही जिससे कामादिक की वृद्धि और चित्त में उन्मत्तता हो वही दृढ़ प्रियकर रक्खा है प्रथमारंभ उसी का होता है और प्राणायाम का करना संध्या समय में भी शुद्ध करना उचित नहीं समझते । कारण कि किसी किसी को तो ज्ञानही नही है कि प्राणायाम किस रूप का है और जो कोई कुछ जानते भी हैं तो वे गायत्री मंत्रका पाठ तीन बार कर लेना ही प्राणायाम के फल को मान लेते हैं—देखिये यह कैसी अज्ञानता है कि अपने गृह की विद्या जिसके प्रताप से निर्भय हो संसार में सुखपूर्वक गृहस्थाश्रम में वा त्यागी होकर विचरें और लोग भी मर्यादा को मानें-उसको दुःखदाई मान लिया है—हठयोग का नाम सुनते ही मानो ग्रासा चाहता है । परन्तु किसी का दोष नहीं ॥

"बिनाशकालेविपरीतबुद्धिः"

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठोहठः ।
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः ॥

संपूर्ण तापोंसे तपायमान मनुष्योंका आश्रय मठरूप और संपूर्ण योगियों का आधार (आश्रय) कमठ (कच्छप) रूप हठयोग है

हठविद्या परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता।
भवेद्वीर्यवतीगुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता ॥

योगसिद्धि का अभिलाषी योगी हठ विद्या को भली प्रकार गुप्त रक्खै क्योंकि गुप्त रखने से यह विद्या वीर्य वाली और प्रकाश करनेसे वीर्यरहित होती है—अभिप्राय यह है कि जो पुरुष योग की सिद्धि चाहे वह पुरुष न तो किसी से कहे कि हम योगाभ्यास करते हैं और न कभी दिखावे—ऐसा गुप्त रखने से साधक का कार्य कुछ ना कुछ सिद्धही होता है और योग का आनन्द मालूम होने लगता है ॥ जो पुरुष योगसिद्धि की इच्छा करे वह आलस्य कभी भी न करे न बहुतसी बातें करे न मंत्र तंत्रों के साधनमें रहे न औषध जड़ी बूटीके चक्कर में पडे यह विघ्न करने वाले हैं इससे उक्त लक्षण के क्रम से अभ्यास करे परन्तु गुरूपदेश ले अभ्यास करे क्योंकि जो विना गुरु के अधिक अभ्यास करता है वह धोखा खाता है और जिससे यह विद्या प्राप्त करे उसीको देवता समझे—सेवा करने में तत्पर रहे और विश्वास रक्खे कि इनका वाक्य हमको अवश्यही फल रूप होगा कारण कि वर्तमान काल में गुरु के न मानने से ही दुर्बुद्धि होरही है इससे गुरू की सेवा करना ही श्रेयस्कर सब प्रकार से हैं-

यह कई एक योगाभ्यास के ग्रन्थोंके संमतसे थोडे ही में लिखा गया है और बहुतसी बातें कहीं २ अनुभवकी भी लिखी गई हैं जो साधकों को उपयोगी होसक्ती है॥ शिवार्पणम्

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्रीगणेशाय नमः ॥

सन्ध्या प्रकरणम्

आदौ ब्राह्मण लक्षणम् ॥

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दयाश्रुतम्।
विद्या विज्ञानं मास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम्

(योग) श्चित्तवृत्तिनिरोधः वा प्राणायामो वा कर्त्तव्यः—चित्तवृत्ति को रोकना या प्राणायाम करना यह योग कहलाता है। मुख्य करके ब्राह्मण को योगाभ्यास साधन करना यह प्रथम लक्षण है इसी से पूर्व में ऋषि लोग योगाभ्यास प्रथम ही करते रहे और इसी विद्या के नष्ट होने से ब्राह्मणों का तेजोंश जाता रहा।

(तपः) स्वधर्मानुष्ठानमेवतपः वा कृच्छ्रचांद्रायणादिव्रतं तपः—स्वधर्ममें तत्पर रहना अथवा कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रत करना (इसमें शरीर सूख जाता है) ब्राह्मण का मुख्यत्व धर्म सन्ध्या गायत्री का जप और वेदाऽध्ययन है॥ "स्वधर्मे निधनंश्रेयः"

(दमः) बाह्येन्द्रियनिग्रहः—नेत्र कर्णादि इन्द्रियों के विषयों से रोकना।

(दानं) स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वपादानं वा सुपात्रेभ्योदीयतेयत्तद्दानं—किसी वस्तु से अपना अधिकार हठाकर दूसरे का स्वामित्व (मालिकपन) कर देना वही दान है अथवा सुपात्र को जो दिया जाय वही दान है। ब्राह्मण को दान लेने और देने का भी अधिकार है चाहै द- रिद्री क्यों न हो—पर्वादिक पर वित्तानुसार अवश्य देना चा- हिये (जैसा द्वार पर अतिथि के आने से अवश्य स- त्कार करें) "दानमेकं कलौयुगे" "धनेनकिंयोन द- दाति याचके" वह धन कैसा जो भिक्षुक को न दियागया

(सत्यम्) याथातथ्यं वाक्यं सत्यम्—जैसी बात हो वैसी कह देना सत्य कहाता है ॥

न हि सत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥

सत्य के बराबर कोई धर्म नहीं और झूंठ बोलने के ब- राबर कोई पाप नहीं और सत्य के समान कोई ज्ञान नहीं इस लिये सदा सत्य बोलना चाहिये।

समूलं वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति इति श्रुतेः॥ जो झूंठ बोलता है वह जड़सहित सूखजाताहै

सत्यंब्रूयात्प्रियंब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेशधर्मः सनातनः॥

सत्य बोले परन्तु प्रिय सत्य बोले और जो प्रिय न हो ऐसा सत्य भी न बोले झूंठी प्रिय भी न बोले अर्थात् झूंठी

बात तो है परन्तु सुनने वाले को प्रिय है तो उसे भी न कहे यह सनातन धर्म है ।

स्त्रीषुनर्मविवाहेषु वृत्यर्थे प्राण संकटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतंस्याज्जुगुप्सितं ॥

स्त्रियों के विषय में, हास्य में, (हंसी ठट्ठा) विवाह में वृत्ति के वास्ते (जीविका) प्राणके संकट में, गऊ ब्राह्मण के लिये और झूंठ बोलने से किसी का प्राण बच जाय तो जीव हिंसा में झूंठ बोलने से दोष नहीं होता ।

(शौचम्) बाह्याभ्यन्तरशुद्धिः—बाहर भीतरसे पवित्रता

अद्भिर्गात्राणिशुध्यन्ति मनःसत्येनशुध्यति ।
विद्यातपोभ्यांभूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

शरीर जल से शुद्ध होता है, मन सत्य से, जीव विद्या और तप से, और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है । बाह्यआचार-मलमूत्रकी शुद्धि स्नान और आभ्यन्तर आचार—मनसे किसी का अनिष्ट नहीं देखना—काम क्रोध को शांत रखना, और योगाभ्यासी का आभ्यन्तर आचार—षट्क्रिया है ॥ आचारधर्म ब्राह्मणको अवश्य पालन करना चाहिये इससे शरीर आरोग्य और मन प्रसन्न रहता है

(दया) दीनेषु अनुकंपादया—दूसरे को दुखी देख कर दुःख निवृत करने में उद्यत होना ।

आत्मवत्सर्वभूतेषु यःपश्यति सपण्डित इति

अपने दुःख के समान दूसरों का भी दुःख जानना दया है अथवा परोपकार करना । "धन्योस्ति कोयोहि परोपकारी"

अष्टादशपुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनँ ।

अठारह पुराणों में व्यासजीने दो बात सारांश रक्खा– परोपकार के समान पुण्य नहीं और दूसरे को दुःख देने के समान पाप नहीं ।

(श्रुतम्) विद्वज्जननिकटे सद्वार्ता श्रवणम् सत्पुरुषों के निकट अच्छी बात सुनना और सुन कर बिचार करके स्मरण राखना "श्रुतेन किंयो नच, धर्ममाचरेत्" वह सुनना किस कामका जो धर्मपर न आरूढ़ हुआ ॥

(विद्या) वेदाऽध्ययनम्–परिश्रम करके वेद-शास्त्र पढ़ना वृथा काल नही विताना "विद्याविहीनः पशुः"–

(विज्ञानम्) वैराग्यचिन्तनम्, विविधज्ञानम्, विशेषज्ञानम् । वैराग्य का चिन्तन करना, अनेक प्रकारका ज्ञान रखना, तत्व को जानना ।

(आस्तिक्यम्) गुरुवेदान्तवाक्येषु बिश्वासः गुरु और वेदांत के बचन में प्रीति राखना, स्वधर्म में स्थित रहना, जहां तक काम क्रोधादि शमन न हों तहां तक कर्म उपासना का त्याग नहीं करना–देवतामें अप्रीति नहीं लाना· ये सब ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥

सन्ध्योपासनशीलश्च सौम्यचित्तोदृढव्रतः ।
ऋतुकालाभिगामीस्यादेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥

सन्ध्योपासन में कुशलता–सरलस्वभाव–दृढ़ ब्रत अर्थात् सत् आचरण को नियम से करने वाला और ऋतु समय मेंही

स्वस्त्री सेवन करना यह ब्राह्मणके लक्षण हैं। येलक्षण ब्राह्मण में होनेसे ब्राह्मणकी अप्रतिष्ठा कहीं नहीं होती और कांति, शीलता, शांतता, बाह्य(बाहेर)में भासित होती है इस तरहके लक्षण युक्त ब्राह्मण को सभी मानकर सक्ते हैं और जो ब्राह्मण (अन्य भी कोई) स्वस्त्री को परित्यागकर परस्त्रीसे प्रीति रखता है वह नष्टता को ही प्राप्त होता जाता है जैसा कहा है ॥

योषिद्धिरण्यभरणाम्बरादि
द्रव्येषु मायारचितेषु मूढः।
प्रलोभितात्माह्युपभोगबुद्धिः
पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥

स्त्रियों के सुवर्ण, भूषण और वस्त्रादि वस्तुओं में जो कि माया से रची गई हैं उन सबोंमें से प्रलोभित चित्त के जो मूर्ख भोग करने की बुद्धि से आसक्त होता है वह नष्ट दृष्टि दीपक में पांखी (पतंगा)के समान नष्ट होता है और भी कहा है।

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्। स्वर्गद्वारस्यविघ्नंनरकपुरसुखं सर्वमायाकरण्डं स्त्रीरत्नंकेनसृष्टं विषमम्रतमयं प्राणिनां मोहपाशः ॥

सब संदेहो का भंवर, अविनय का घर, साहसों का शहर, दोष भरी, सैकड़ों कपटयुक्त, अविश्वास का खेत, स्वर्ग द्वार का

विघ्न, नरकपुर का सुख, सब माया का डिब्बा यह स्त्रीरत्न अमृतमय विष है प्राणियों के मोह की फांसी है। स्कान्दे॥

परदारोपभोगेन यत्पापं समुपार्जितम्।
न तत्क्षालयि तुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि॥

पराये स्त्री (दूसरे की औरत) के संग भोग करने से जो पाप इकट्ठा होता है वह पाप सैकड़ों प्रायश्चित्त करने से भी नहीं नष्ट होतो। और भी कपिलऋषिने अपने माता के प्रति कहा है कि योगी कभी भी स्त्री संग न करे॥

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासुजातु
योगस्यपारं परमारुरुक्षुः।
मत्सेवया प्रति लब्धात्मलाभो
वदन्ति या निरयद्वारमस्य॥

योग के पार जाने वाला जीव कभी भी स्त्री का संग न करे मेरी सेवा करके ईश्वर की प्राप्ति होती है योगिराज स्त्री को नरक का द्वार कहते हैं अभिप्राय यह है कि पर स्त्री गमन जो करता है उसकी सब प्रकार से हानि होती है बुद्धि में तमोगुण सर्वदा वर्तमान रहता है, मलीनता का त्यागनहीं होता, चाहे शास्त्री क्यों न हो और जो ब्राह्मण स्वस्त्री से ही प्रीति और सन्ध्योपासन में तत्पर रहता है उस की सुबुद्धि सदा बनी रहती है कभी दुःखी नहीं प्रतीत होता कारण कि सन्ध्या का बड़ा माहात्म्य है यथा।

याज्ञवल्क्यः

यावन्तोऽस्यांपृथिव्यां हिविकर्मस्थास्तुवैद्विजाः

तेषाम्वैपावनार्थाय सन्ध्यासृष्टा स्वयम्भुवा

इस पृथिवी में जितने द्विजाति दुराचारी हैं उन्हीं के शुद्ध करने के लिये ब्रह्माने खुद (स्वयं) सन्ध्या को उत्पन्न किया है

निशायां वा दिवावापि यदज्ञानं कृतं भवेत्।
त्रिकालसन्ध्याकरणात्तत्सर्वं हि प्रणश्यति ॥

रात्रि में अथवा दिन में अज्ञानता से जो पाप हो जावे वह त्रिकाल (तीनों काल) सन्ध्या करने से सब नाश हो जाता है।

शातातपः

सन्ध्या मुपासते येतु सततं शंसितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोक मनामयम् ॥

जो लोग नियम पूर्वक नित्य ही संध्योपासन करते हैं वे निष्पाप हो कर निरामय ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं।

सन्ध्याऽभावेदोषाः (मरीचिः)

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्यायेनानुपासिता।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतःश्वचाऽभिजायते ॥

जो सन्ध्या को नहीं जानता जो सन्ध्या की उपासना नहीं करता वह जीता हुआ शूद्र के समान और मरने पर कुत्ता होता है।

व्यासः

तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम्।
तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्नहि ॥

इस करके सन्ध्योपासन उत्तम कर्म नित्य करे बिना इस के किये दूसरे कर्म का अधिकारी नहीं होता– .

भरद्वाजः

सन्ध्योपासनहीनो यो न योग्यः सर्वकर्मसु ।
तस्मादुपास्यविधिना सन्ध्यामन्यक्रियाश्चरेत्

जो पुरुष संध्या नहीं करता वह किसी कर्म का अधिकारी नहीं होता है इससे पहिले सन्ध्या विधि सहित करके तब दूसरे कर्म को करे ।

यमः

एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्रह्मण्यं यन्नचेष्टितम्
यस्यनास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मणउच्यते ॥

ये तीन सन्ध्या जो कही गई हैं वे ब्राह्मण के मुख्य कर्म हैं इन को जो ब्राह्मण आदर पूर्वक नहीं करता उस को ब्राह्मण नहीं कहना चाहिये अर्थात् कैसा भी कार्य हो तो भी संध्या को न छोड़ना चाहिये क्योंकि वो ब्रह्मत्व से हीन हो जाता है ।

विश्वामित्रकल्पे

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदाः शाखा धर्म कर्माणि पत्रे ।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रे ।

विप्र रूपी वृक्ष का मूल तो सन्ध्या है वेद डालियां हैं और धर्म कर्म आदि पत्ते हैं इससे मूल (जड़) की रक्षा यत्न

पूर्वक करना चाहिये क्योंकि जड़के सूखने से डाली पत्ते आदि नहीं रहते इस लिये ब्राह्मण को उचित है कि सन्ध्या का परित्याग कभी भी न करे ।

स्वकाले सेवितानित्यं सन्ध्याकामदुघाभवेत् ।
अकाले सेवितासाच सन्ध्याबन्ध्याबधूरिव ॥

जो ब्राह्मण सन्ध्या के कहे हुये काल में सन्ध्या करता है उसकी सन्ध्या कामधेनु के समान फल देने वाली होती है और जो समय पर सन्ध्या नहीं करता उस की सन्ध्या बन्ध्या स्त्री के समान है ।

प्रातः सन्ध्यां सनक्षत्रां मध्यमास्नानकर्मणि ।
सादित्यापश्चिमां सन्ध्या मुपासीतयथाविधि ॥

प्रातः काल की सन्ध्या तारे देखते हुए (सूर्योदय से दो घड़ी पहिले) मध्यान्ह की सध्यान स्नान के अनन्तर (डेढ़ प्रहर दिन चढ़े से मध्यान्ह के उपरान्त चार बजे तक) और सायं सन्ध्या सूर्य सहित करना चाहिये ॥

उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद् घटिकात्रयं ।
तावत्सन्ध्यामुपासीत प्रायश्चित्तमतः परम् ॥
कालात्तिक्रमणे जाते चतुर्थार्घंप्रदापयेत् ।
अथवाष्टशतंदेवीं जप्त्वादौतां समाचरेत् ।

उदय से और अस्त से ऊपर तीन घड़ी तक सन्ध्या करना चाहिये इससे अधिक काल में सन्ध्या करने से प्रायश्चित्त होता है सन्ध्या का समय थोड़ा बीतने पर सूर्य को चौथा अर्घ देवे और जो अधिक समय बीत गया हो तो एक सौ आठ

१०८ वार गायत्री का जपकर संध्या प्रारंभ करे और विशेष बात यह है कि जो काल बीत गया हो तो इस मंत्र से काल का आकर्षण कर लेवे ॥

ॐ ऋचम्वाचम्प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणम्प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये व्वागोजः सहो जो मयिप्प्राणापानौ ।

यदि कार्य के कारण से प्रातः काल, मध्याह्न काल बीत जावे पश्चात् सावकाश मिले तब स्नान कर के शुद्ध हो प्रथम प्रातः अनन्तर मध्यान्ह सन्ध्या करके तब सायं सन्ध्या करे ।

सूतके सन्ध्या विचारः (ग्रन्थान्तरे)

सर्वकर्मपरित्यज्य सूतके मृतके तथा ।
न त्यजेत् मानसीं सन्ध्यां नत्यजेच्छिवपूजनम्

सूतके (पुत्रादि के होने पर) मृतके (पितादि के मरने पर) सब कर्म का त्याग कर देवे परन्तु मानसी सन्ध्या और शिवपूजन न त्याग करे । अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण सन्ध्या का परित्याग कभी न करे यदि अधिक से अधिक भी काल बीत गया हो तो भी सन्ध्या करे, कर्म का नाश नहीं करना चाहिये और मार्ग में शकट (गाड़ी) आदि पर भी मानसी सन्ध्या समय आने पर कर लेना उचित है । "दूषितोप्याचरेद्धर्ममिति वचनात्" और पुलस्त्य का बचन है

सन्ध्यामिष्टिंचरुंहोमं यावज्जीवं समाचरेत् ।
न त्यजेत्सूतकेवापि त्यजन्गच्छेदधोद्विजः ॥

सन्ध्या और अग्निहोत्र (इष्टि चरु होम यह अग्निहोत्र का अंग है) जब तक शरीर में प्राण है तब तक न छोड़े, छोड़ने से ब्राह्मण अधोगति (नरक) को प्राप्त होता है।

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फल मौषधम्।
भक्षयित्वापिकर्तव्याः स्नानदानादिकाःक्रियाः।

ऊख (गन्ना) जल, दूध, कन्दमूल, पान, फल और औषध (दवा) यह भक्षण करने पर भी स्नान दान आदि शुभकर्म करना योग्य है।

ब्राह्ममुहूर्त्तः

रात्रे पश्चिमयामस्य मुहूर्तोयस्तृतीयकः।
स ब्राह्मइति विज्ञेया विहितः सप्रबोधने॥

रात्रि के चौथे पहर का तीसरा मुहूर्त्त ब्राह्म कहाता है उसमें उठना चाहिये।

प्रातःस्नानं सनक्षात्रं सन्ध्यानक्षात्रसंयुता।
होमःप्रागुदयाद्भानोर्गायत्र्यास्तु ततो जपः॥

प्रातः स्नान और सन्ध्या तारावों के रहते ही करे और सूर्योदय से पहिले हवन करें तदनन्तर गायत्री का जप करना उचित है।

प्रातर्मध्यान्हयोःस्नानं वाणप्रस्थगृहस्थयोः।
यतेस्त्रिषवणं प्रोक्तं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः॥

वानप्रस्थ और गृहस्थ प्रातः और मध्यान्ह में स्नान करें और सन्यासी को तीनों काल और ब्रह्मचारी को केवल

एकही बार स्नान करना उचित है यदि ब्रह्मचारी त्रिकाल स्नान करे तो दोष नहीं ।

स्नानं विधाय नद्यादौ किंवा तप्तोदकेन च ।
मन्त्रस्नानं च वा कृत्वा प्रातः सन्ध्यां समाचरेत्

नदी आदि के शीतल जल से स्नान करे अथवा गरम जल से स्नान करे यदि ज्वरादि के कारण से स्नान न कर सके अथवा विशेष जल न प्राप्त हो तो हांथ पांव धोके मन्त्र पढ़ के जल से शरीर मार्जन करके प्रातः काल की सन्ध्या करे । आपोहिष्ठेत्यादि मंत्र से मंत्र स्नान, दश गायत्री पढ़कर मार्जन करने से गायत्री स्नान, और अग्निरिति भस्म० इस मन्त्र से अथवा द्वादश वार ओंकार पढ़ कर भस्म लगाने से उत्तम भस्म स्नान होता है ।

त्रिकाल सन्ध्यानामानि (व्यासः)

गायत्री नाम पूर्वान्हे सावित्री मध्यमे दिने ।
सरस्वती च सायान्हे एवं सन्ध्यात्रिधा मता ।

प्रातः काल में सन्ध्या का गायत्री मध्यान, में सावित्री और सायंकाल में सरस्वती नाम है ।

सन्ध्योपयोगि पात्राणि (मरीचिः)

गोकर्णाकृतिवत्पात्र ताम्रं रौप्यं च हाटकम् ।
जलं तत्र विनिक्षिप्य सन्ध्योपासनमाचरेत् ।

सुवर्ण, चांदी अथवा तांवा का पात्र गऊ के कान की तरह बनवा कर उसे सन्ध्यो पासनके काम में लावे ।

जलाऽभावे अर्घ्यविचारः (अग्निस्मृतौ)

जलाऽभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि ।

उभयोः सन्ध्ययोः काले रजसैवार्घ्यं मुच्यते ॥

जहां पर जल न मिले, बड़ा रस्ता चलने में, बन्धन में और अपवित्रता में दोनों सन्ध्याओं विषय धूल (रज–धूर) से ही अर्घ देवे ।

हेमाद्रौ देवलः

यज्ञोपवीतेद्वेधार्ये श्रौतेस्मार्ते च कर्मणि ।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्रालाभेतदिष्यते ॥

श्रुति स्मृति में कहे हुये कामों के करने में दो जनेऊ पहिरना चाहिये यदि अंगौछा न हो तो उस के बदले में एक जनेऊ और धारण करे ।

ॐकारः पितृरूपेण गायत्री मातरस्तथा ।
पितरौ यो न जानाति ब्राह्मणः सोऽन्यरेतजः ॥
गायत्री वेद जननी गायत्री लोक पावनी ।
न गायत्र्याः परं जप्य मेतद्विज्ञान मुच्यते ॥
गायत्रीं तु परित्यज्य अन्य मन्त्र मुपासते ।
सुसिद्धान्नं परित्यज्य भिक्षामटतिदुर्मतिः ॥
सहस्रं परमांदेवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जप यज्ञः सकीर्त्तितः ॥

ओंकार यह पिता रूप है तैसे ही माता गायत्री है जो ब्राह्मण पिता माता को अर्थात् ओंकार और गायत्री को नहीं जानता वह वर्ण संकर है ॥ गायत्री वेद की माता है और

गायत्री लोगोंको पवित्र करने वाली है और गायत्री से अधिक जपनेका मंत्र कोई नहीं है इसीको ज्ञान विज्ञान कहते हैं ॥ जो ब्राह्मण गायत्री मंत्रको छोड़कर दूसरे मन्त्रकी उपासना करता है वह ऐसा दुर्बुद्धि है जैसे कोई बने हुए भोजनको छोड़कर भिक्षा मांगता है। निरन्तर एक सहस्र (हजार) गायत्री का जप परम श्रेष्ठ है एक सौ मध्यम और दशवार कनिष्ट पक्ष का जाप है इसी को जप यज्ञ कहते हैं।

"सर्वेते जप यज्ञस्य कलांनार्हन्ति षोड़शीं"

जितने यज्ञ हैं वे गायत्री जप के सोलह भाग में से एक भाग के समान नहीं है।

तंत्रे पाद्मेपि

अष्टोत्तरशतामाला तत्रस्यादुत्तमोत्तमा
शतसंख्योत्तमामाला पञ्चाशन्मध्यमामता
चतुःपञ्चाशतो यद्वा अधमासप्तविंशतिः
अधमा पञ्चविंशत्या यदिस्याच्छतनिर्मिता

१०० एक सौ आठ अथवा १०० सो दाने की उत्तम और ५० वा ५४ दाने की मध्यम और २७ वा २५ दाने (गुरिया-मनिया) की अधम माला कहाती है।

पञ्चाशदक्षराण्यत्रा नुलोमप्रतिलोमतः
इत्येवं स्थापयेत्स्पष्टं न कस्मैचित्प्रदर्शयेत्

पचास ५० अक्षर अ से क्ष लक होते हैं इसको सीधे उलटे क्रम से स्थापित करके जप करे परन्तु गुप्त रक्खे किसी को देखावे नहीं। जैसा प्रथम मंत्र बोले पुनः अं पुनः मन्त्र पुनः आं

इसीक्रम से क्षं तक उच्चारण करे अनन्तर विलोम अर्थात् मंत्र बोल के पुनः क्षं बोले पुनः मंत्र पुनः हं पुनः मंत्र पुनः सं इत्यादि क्रम से अ तक पूरा करे। इस प्रकार शत संख्या की माला हुई। यदि अष्टोत्तर शत वर्णों से जपना हो तो इसी क्रम से शत पूरे होने पर अं, कं, चं, टं, तं, पं, यं, शं, वर्ग के आदि अक्षरों का ग्रहण करे॥ यह मातृका माला—वर्णमाला करके विख्यात है इस माला पर जपने से मंत्र अवश्य सिद्ध होता है और भुक्ति मुक्ति का दाता है॥ इस का माहात्म्य गायत्री स्तवराज में ऐसा कहा है

"आदिक्षान्ति स बिन्दुयुक्तसहितं मेरुक्षकारान्तकं
व्यस्ताव्यस्तसमस्तवर्गसहितं पूर्णं शताष्टोत्तरं
गायत्रींजपतांत्रिकालसहितां नित्यं सनैमित्तिकी
मेवंजाप्यफलंशिवेन कथितं सद्भोगमोक्षप्रदम्"

वर्णैर्विन्यस्तया यस्तु क्रियते मालया जपः।
एकवारेण तस्यैव पुरश्चर्या कृता भवेत्॥

इन वर्णों की माला कल्पना करके जो किया जाता है वह एकही बार में उसका पुरश्चरण हो जाता है क्योंकि केवल वर्णों के जप का माहात्म्य तंत्रों में विशेष कहा है। यथा योगतत्वोपनिषदि॥

मातृकादि युतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत्।
क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादि गुणान्वितम्॥

आसन विशेष

सव्यपार्ष्णिगुदेस्थाप्य दक्षिणं च ध्वजोपरि।

योनिमुद्रावन्धएष भवेदासनमुत्तमम् ॥

वायां चरण की एंड़ी (पार्ष्णि) गुदा स्थान पर लगावे और दहिना चरण उपस्थ (लिङ्ग के ऊपर) के ऊपर रख कर बैठे यह आसनों में उत्तम योनिबन्ध आसन कहाता है। यह सिद्धासन का भेद है।

योनि मुद्रासने स्थित्वा प्रजपेद्यः समाहितः
यं कंचिदपि वा मन्त्रं तस्यस्युः सर्वसिद्धयः
छिन्नारुद्धाःस्तम्भिताश्चमिलितामूर्छितास्तथा
सुप्तामत्ता हीनवीर्या दग्धाःप्रत्यर्थिपक्षगाः
वाला यौवनमन्त्राश्च वृद्धामत्ताश्च ये मताः
योनि मुद्रासनेस्थित्वा मन्त्रानेवं विधान्जपेत्
तस्य सिद्ध्यन्ति ते मन्त्रा नान्यथा तु कथंचन

जो इस योनि मुद्रासन पर वैठ कर कोई भी मन्त्र जप करता है वह अवश्य सिद्ध होता है॥ छिन्नरुद्ध—स्तम्भित आदि किसी प्रकार का भी दूषित मन्त्र क्यों न हो—योनि मुद्रासन पर स्थित होकर विधान से जो जप करै तो अवश्य मन्त्र सिद्ध होता है दूसरे प्रकार से नहीं। और भी योग के ग्रन्थों में इस योनि मुद्रा का माहात्म्य अधिक वर्णन किया है अर्थात सब सिद्धि युक्त आत्मा का दर्शन होता है। आसन लिखने का अभिप्राय यह है कि विना आसन की दृढ़ता से कुछ काल तक वैठा नहीं जाता और न चित्त लगता है, चंचलता

बनी रहती है तब मंत्र सिद्ध कहांसे होगा आसन की दृढ़तासे चंचलता(उद्वेग,का नाश होताहै और चित्तमें एकाग्रता होतीहै

काल नियम (पाद्मे)

ब्राह्मंमुहूर्त्तमारभ्या मध्यान्हं प्रजपेन्मनुम् ।
अतऊर्ध्वंकृते जाप्ये विनाशाय भवेद्ध्रुवम् ॥
पुरश्चर्या विधावेवं सर्वकाम्य फलेष्वपि ।
नित्ये नैमित्तिके वापि तपश्चर्यासु वा पुनः ॥
सर्वदैव जपः कार्यो न दोषस्तत्र कश्चन ।

ब्राह्ममुहूर्त्त अर्थात् प्रहर रात्रि शेष रहे तब से लेकर मध्याह्न पर्यन्त जप करना श्रेष्ठ है इस के उपरान्त जप करे तो कर्ता का नाश होता है यह सम्पूर्ण कार्यों के अनुष्ठान का क्रम है। नित्य नैमित्तिक तपश्चर्या का नियम नहीं है अर्थात् दिन प्रति का अनुष्ठान चाहे जब तक जितनी इच्छा हो जप करता रहे उसमें कुछ दोष नहीं होता।

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनचर्या तथैव च ।
नित्यत्रिषवणं स्नानं क्षुद्रकर्म विवर्जनम् ॥
नित्यपूजानित्यदान मानन्दास्तुति कीर्तनम् ।
नैमित्तिकार्चनं चैवं विश्वासो गुरुदेवयोः ।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माःस्युर्मंत्र सिद्धिदाः ॥

पृथ्वी में सोना १ ब्रह्मचर्य्य से रहना २ प्रयोजन मात्र बोलना ३ नित्य तीनों काल स्नान करना ४ नीच कामों को

न करना ५ नित्य पूजा करना ६ नित्य दान वित्तानुसार देना ७ आनन्द हो स्तुति करना ८ इष्टदेव का भजन गाना, ९ पर्वादि में देवपूजन करना १० गुरु की सेवा करना वा ध्यान करना ११ देवता में विश्वास रखना अर्थात देवता अवश्य कृपा करेगा ऐसी भावना राखना १२ ये बारह जपनिष्ठा धर्म मंत्र सिद्धि को देते हैं।

जप नियमः (याज्ञवल्क्यः)

जपस्येहविधिं वक्ष्ये यथाकार्यं विधानतः।
नाकुर्वन्नापि हसन् न पार्श्वमवलोकयन् ॥
नापाश्रितो न जल्पँश्च न प्रावृतशिरास्तथा।
नपदा पादमाक्रम्य न चैव हि तथा करौ ॥
नैवं विधिं जपं कुर्यान्न च संश्रावयञ्जपेत्।
तिष्ठंश्चेद्वीक्षमाणोऽर्कमासीनःप्राङ्मुखो जपेत्॥

याज्ञवल्क्य ऋषि जप की विधि विधान से कहते हैं कि जप करने के समय न चले न हिले, न हंसे, न इधर उधर देखे न किसी वस्तु का तकिया लगावे, न किसी से बात करे, न शिर को ढांके, और न पांव से पांव (पाद) को दबावे, वैसेही हाथ से हाथ को न दबावे। इस ऊपर कहे हुये प्रकार से जप न करे और जप के मंत्र को दूसरा न सुन सके। यदि खड़ा हो के जप करे तो सूर्य नारायण की ओर (तरफ) देखे और बैठ कर जप करे तो पूर्व को मुख करके बैठे और भी नियम इसी ग्रंथ में ऐसा है कि शिर, ग्रीवा (गर्दन) को न हिलावे,

दांतों को न प्रकाशित करे, गीले वस्त्र (आर्द्र) और एक वस्त्र पहिने हुए व नीले वस्त्र और पुराने मैले वस्त्र धारण किये हुये जप न करे।

मनोमध्येस्थितो मंत्रो मंत्रमध्येस्थितं मनः।
मनोमन्त्रसमायुक्त मेतद्विजपलक्षणम् ॥

मन में मन्त्र और मन्त्र में मन रहै इस प्रकार मन और मन्त्र का एक साथ योग करके जप करना चाहिये अर्थात् चित्त एकाग्र करके जप करे।

विश्वामित्रः

शनैरुच्चारयेन्मन्त्र मीषदोष्ठौ च चालयेत्
अपरैर्नश्रुतःकिंचित्सउपांशुर्जपः स्मृतः

जीभ और ओठ को हिलाता हुआ धीरे २ मन्त्र को जपे परन्तु दूसरे को सुनाई न दे उसको उपांशु जप कहते हैं। और मन ही में पद शब्द अक्षर को स्पष्ट उच्चारण करे वह मानसिक जप है और इसी क्रम से वचन द्वारा उच्चारण करने को वाचिक जप कहते हैं परन्तु जो जप चित्त एकाग्र कर मंत्र के अर्थ को चिन्तन करता हुआ होता है या जपाऽधिपति देवता का ध्यान करता हुआ होता है वही जप श्रेष्ठ है

कात्यायनः

अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्ध्योपासनकं विधिम्।
अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्या हीनो यतःस्मृतः॥

इसके अनन्तर मैं संध्योपासन की विधि कहूंगा क्योंकि संध्या से हीन विप्र सब कर्मों में अयोग्य ही होता है

सांख्यायनगृह्ये

अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्या मुपास्ते नित्यं वाग्यतः उत्तरपराभिमुखोन्वष्टम्मदिशमा नक्षत्र दर्शनात् । अतिक्रान्तायां महाव्याहृतीस्वस्त्यप-नान्यथिजप्त्वा । एवम्प्रातः प्रांमुखस्तिष्ठन्ना-मण्डलदर्शनात् ॥

यज्ञोपवीत धारण किया हुआ पुरुष बन (जंगल—एकांत स्थान नदी तट वा देवालय) में कुशा हाथ में लिये हुये नित्यही वार्तालाप को छोड़कर उत्तर पश्चिम अर्थात वायु कोण की ओर मुख किये हुए ताराओं के उदय पर्यन्त सायं काल सन्ध्या की उपासना करे। यदि सन्ध्या काल बीत गया हो तो महाव्याहृति गायत्री और स्वस्तिवाचन मन्त्रों को जप कर सन्ध्योसन करे। ऐसे ही प्रातः काल पूर्व दिशा की ओर मुख किये हुये सूर्योदय पर्यन्त सन्ध्योपासन करे। इस से आगे सन्ध्या का अनुक्रम कहके सन्ध्या करने की विधि लिखूंगा॥

सन्ध्या करने का अनुक्रम ॥

स्नान करके धोया हुआ वस्त्र पहिन कर एक उपवस्त्र (दुपट्टा—अंगोछा) ले, आसन पर बैठ सावधान हो सन्ध्या करे। प्रथम भस्म लगावे, आचमन कर, रुद्राक्ष पहिने, कुश पवित्री धारण कर, हृदयादि शुद्ध करे अनन्तर संकल्प करके, आसन शुद्धि करता हुआ, उक्त प्रमाण से चुटैया (शिखा) बांधे पश्चात् यथा विधि से भूत शुद्धि कर, कलश शुद्धि (जल को उक्त मार्ग से अभिमंत्रण करे) करे अनन्तर ऋतं सत्यं मन्त्र

से तीन आचमन कर, प्राणायाम का विनियोग करता हुआ, प्राणायाम करे पुनः सूर्य्यश्च इस मंत्र से तीन आचमन कर, आपो हिष्ठेत्यादि मंत्र से मार्जन करे पश्चात् द्रुपदादिवेति मन्त्र को तीन बार पढ़ जल शिर पर छोड़, पुनः ऋतं सत्यं मंत्र से अघमर्षण (नासिका में जल लगाना) करे अनन्तर अन्त श्चरसि मन्त्र से आचमन कर (यहां एक ही आचमन करना चाहिये—ऐसा मेरे को स्मरण है) सूर्य भगवान को जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प सहित तीन अर्घ्य देवे पश्चात् दो या सात प्रदक्षिणा कर, सूर्य का उपस्थान (स्तुति) उक्त ४ मन्त्रों से करे, अनन्तर बैठकर गायत्री से दो प्राणायाम कर, न्यास करता हुआ, गायत्री जपने के निमित्त विनियोग करे पश्चात् तेजोसि मन्त्र से आवाहन कर, गायत्र्येकपदी मन्त्र से गायत्री का उपस्थान करे, पुनः शापमोचन करके, २४ मुद्राओं को कर, गायत्री से तीन आचमन करता हुआ, सावधान हो यथाशक्ति जप करे ॥ जप के अनन्तर गोमुखी शिर पर रख, तीन आचमन कर, आठों मुद्राओं को करे अनन्तर गुह्याति गुह्य वाक्य से जल छोड़, गायत्री से षडङ्गन्यास करे पश्चात् गोमुखी शिर पर से उतार, एक चक्रो मन्त्र से सूर्य की स्तुति करे अनन्तर सन्ध्या कर्म का अर्पण जल ले करे पश्चात् विसर्जन करके शिखा के ग्रन्थि को छोड़ के पुनः बांध लेवे अनन्तर लघु प्राणायाम कर, सुख से कवचादि का पाठ करना हो तो करे। उठते समय आसन के नीचे जल छोड़कर मृतिका (मिट्टी) ललाट में किञ्चित् लगा लेवे या स्पर्श करे

इति सन्ध्या करने का अनुक्रमणिका ॥

सन्ध्या प्रारम्भः ॥

श्रुतिः- अहरहः सन्ध्या मुपासीत ।

नित्य प्रति सन्ध्या बन्दन करे

यथोक्तस्नानानन्तरं धौतं वस्त्रं परिधायोपवस्त्रं गृहीत्वानन्तरं कृष्णाजिने* वा कुशासने वा ऊर्णासने शुचिस्थले स्वस्तिकादौ वासनविधिना प्राङ् मुखउपविश्य पश्चात्सन्ध्योपासनमारभेत् ॥

स्नान करके शुद्ध सूखा वस्त्र पहिन अँगौंछा ले मृगचर्म या कुशासन या ऊन के आसन पर बैठ पूर्व या उत्तर मुख हो सन्ध्या करे। तत्रादौ भस्म धारणम्

*कृष्णाजिने भवेन्मुक्तिः ज्ञानवृद्धिः कुशासने ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति मनुष्यः कम्बलासने ॥

(पाद्मे) वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्म संयुतः ।
भस्मस्नानरतोविप्रो भस्मशायी जितेन्द्रियः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात ।

यह भस्म अग्नि का वीर्य है इस करके पक्षपात रहित हो सब को भस्म धारण करना उचित है चाहे वैष्णव सौरादि कोई हो—क्योंकि विना अग्नि के किसी का भी निर्वाह नहीं होता जैसा कि कोई पर्वादिक आने पर कुछ न कुछ हवन करना ही पड़ता है उस समय हवन के अन्त में ललाटादि में भस्म अवश्य धारण करना पड़ता है (त्र्यायुषं जमदग्नेः रिति ललाटेति) तब सन्ध्या में क्यों न धारण करना—और देखिये

मन्त्राः

ॐ अग्निरितिभस्म वायुरितिभस्म जलमितिभस्म स्थलमितिभस्म व्योमेतिभस्म सर्वछं हवा इदं भस्ममन एतानि चक्षूंछंषि भस्मानि ॥
ॐ प्रसद्यभस्मनायोनिमपश्चपृथिवीमग्ने सछंसृज्यमातृभिष्ट्वंज्योतिष्मान्पुनरा सदः—

ओं भवायनमः ललाटे ओं शर्वायनमः हृदि ओं रुद्रायनमः कंठे ओं पशुपतयेनमः दक्षिण बाहौ ओं उग्रायनमः वामबाहौ ओं महादेवाय नमः पृष्ठे ओं भीमायनमः शिरसि ओं ईशायनमः गुह्ये

कि जब पाक (रसोई) होता है तब सब पदार्थों में भस्म (अग्निवीर्य) उड़ २ के पड़ती है अर्थात् कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसमें भस्म न पड़ती हो वह पदार्थ भक्षण किया जाता है फिर सन्ध्या में क्यों न लगाना—इसमें पक्षपात कुछ नहीं है। हां सन्ध्या के पश्चात देवार्चन करके जो चन्दन देवता का उच्छिष्ट (शेष) बचा हो उसको संप्रदायाऽनुसार त्रिपुंड्र वा ऊर्ध्वपुंड्र धारण करे।

प्रातः स सलिलं भस्म मध्यान्हे गन्ध मिश्रितम्।
सायान्हे निर्जलं भस्म एवं भस्म विलेपयेत्।
(कात्यायनः) श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः।
मध्यांगुलित्रयेणैव स्वदक्षिण करस्य च॥
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विद्वान सर्वकल्मषनाशनम्।
(भविष्यपुराणे) सत्यं शौचं तपो होमस्तीर्थं देवादि पूजनम्।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्।

एतैर्मन्त्रैर्ललाटाद्यङ्गेषुभस्मधारयेत् इस मंत्रसे ललाट आदि अंगोंमें भस्म लगावे भस्मोद्धूलितहस्तेनात्रिराचम्य- भस्म लगा हुआ हाथसे तीन आचमन गायत्रीसे करके अंगूठेकी जड़ से ओंठ को पोंछ कर नासिका और दहिने कान को जल से स्पर्श करे परन्तु आचमन ऐसा करे कि दहिने हाथ में जल ले कनिष्ठिका अंगुष्ठ को छोड़ और वाएं हाथ की तर्जनी को लगा के तब आचमन करे यह आचमन की मुद्रा है।

आचमन मंत्राः* ॐ तत्सवितुर्वरेण्यंस्वाहा ॐ भर्गोदेवस्य धीमहिस्वाहा ॐ धियोयोनः प्रचोदयात्स्वाहा ॥

इस के अनन्तर कंठ में रुद्राक्ष पहिने।

---

* श्रौताचमनम्-त्रिवारं जलप्राशनं त्रिपदयागायत्र्या-आपोहिष्ठेत्यादि जपनं सप्तव्याहृतीनांमुच्चारणम् अंते च गायत्री शिरः पाठः (देव्याःपादैस्त्रिभिःपीत्वेति विश्वामित्र-कल्पे) स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वारथ्या प्रसर्पणे।

आचान्तः पुनराचामेद्वाससी परिधाय च।

दक्षिणे नोदकं पेयं दक्षं वामेन संस्पृशेत

तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामो न युज्यते

(नागदेवः) संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिनाद्विजः।

मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत्

दक्षिणे च स्थितं तोयं तर्जन्यासव्य पाणिनः

तत्तोयं संस्पृशेद्यस्तु सोमपानं समं स्मृतम

"आचमनार्थं शीतोदकं ग्राह्यम्"

गोकर्णाऽकृतिहस्ते न माषमात्रं जलं पिबेत्।

(याज्ञवल्क्यः)त्रिप्राश्यापोद्विरुन्मृज्य खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् ॥

मंत्रः* ॐ अघोरक्लैं अघोरतरक्लैं ह्रीं नमस्ते रुद्राक्षरूपाय क्लैं फट् स्वाहा ॐ ब्रह्मा मुखे विष्णु मध्ये कंठेरुद्र समाचरेत्। रोमेरोमे च देवानां रुद्रदेव नमोस्तुते वा त्र्यम्बकं यजामहेति मानस्तोकेन मंत्रेण वा धारयेत्

इसके अनन्तर आगे लिखे हुए मंत्र से कुश पवित्र धारण करे

मन्त्रः† ॐ पवित्रेस्थोव्वैष्णव्योसवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य र-

---

*(स्कान्दे) केवलानपि रुद्राक्षान्यथा लाभं विभर्तियः।
तन्नस्पृशंति पापानि तमांसीवविभावसुम् ॥
(पाद्मे) नर्यभस्मसमायुक्तो रुद्राक्षान्यस्तु धारयेत्।
महापापैरपिस्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥

†(मार्कण्डेयः) चतुर्भिर्दर्भपिंजूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम्।
एकैकन्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥
(हारीतः) उभयत्रस्थितैर्दर्भैः समाचमति यो द्विजः।
सोमपानं फलं तस्य भुक्त्वा यज्ञफलं भवेत्।
स्नानेहोमेजपेदाने स्वाध्याये पितृकर्मणि।
करौ सदर्भौ कुर्वीत तथा सन्ध्याभिवादने।
यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य यथा चक्रं हरेस्तथा ॥
त्रिशूलं च त्रिनेत्रस्य ब्राह्मणस्य पवित्रकम्।
कुशाः काशाः शरा दूर्वा यव गोधूमबल्वजाः
सुवर्णं रजतं ताम्रं दशदर्भाः प्रकीर्त्तिताः।

यह कुश पवित्र करता है इसको धारण करने से जल तीर्थ रूप हो जाता है उच्छिष्टादि का भेद नहीं रहता।

इमभिः तस्यते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनस्तच्छकेयम् ।

इस मंत्र से पवित्री पहिन कर बाएं हाथ में तीन से अधिक और दहिने हाथ में पवित्री सहित तीन कुश लेवे अनन्तर हृदयादि पवित्र करे यथा ।

ओं विष्णुर्विष्णुः ओं वाग्वाक् ओं प्राणः प्राणः ओं चक्षुः चक्षुः ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ओं नाभिः ओं हृदयम् ओं कंठः ओं मुखम् ओं शिरः ओं शिखा ओं बाहुभ्याम् यशोबलम् । इन स्थानों को स्पर्श करे अपवित्रः पवित्रोवेत्यस्य वामदेवऋषिः गायत्रीछन्दः विष्णुर्देवता हृदिपवित्रकरणे विनियोगः ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा । यःस्मरेत्पुण्डरीकाक्षं सवाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

ओं भूः पुनातु शिरसि ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः ओं स्वः पुनातु कण्ठे ओं महः पुनातु हृदये ओं जनः पुनातु नाभ्याम् ओं तपः पुनातु पादयोः ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ओं खंब्रह्मपुनातु सर्वत्र

इन मन्त्रों से शरीर के ऊपर कुश से जल छिड़के इस के अनन्तर सन्ध्या करने के लिये संकल्प करे यथा ॥

"संकल्पः"आदौतिथिवारादि उच्चार्य्यममोपात्तदुरितक्षयद्वाराश्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थंप्रातःसन्ध्योपासनमहंकरिष्ये॥"पुनर्भूशुध्यादि प्रयोगः कर्तव्यः"

इसके अनन्तर पृथ्वी शुद्ध करे (आसन शुद्धि) यथा।

नमस्कारः दक्षिणे ओं सरस्वत्यैनमः ओं शंखनिधये नमः वामभागे ओं लक्ष्म्यै नमः ओं पद्मनिधये नमः ॥ आसनम् * ॥ पृथिवित्वयेति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः† सुतलं छन्दः कूर्मो देवता पृथिवीबीजम् आकाशः शक्तिः अन्तरिक्षं कीलकम् आसने विनियोगः ॥

ॐ पृथिवित्वयाधृता लोका देवित्वं विष्णुनाधृता। त्वंचधारयमांदेविपवित्रंकुरु चासनम्

इस मन्त्र को पढ़ कर आसन के ऊपर जल छिड़के या हस्त से स्पर्श करे।

प्रार्थना ॥ ओं विश्वशक्त्यैनमः ओं महाशक्त्यै नमः ओं कूर्मासनाय नमः ओं योगासनाय नमः ओं अनन्तासनायनमः ओं विमलासनायनमः ॥ मध्ये ॥ ओं परमसुखासनायनमः ओं भूर्भुवः स्वः आत्मासनायनमः ॥

अनेनमन्त्रेण पुष्पादिना आत्मनः आसनदानम्

इस मन्त्र से गन्धाक्षत पुष्प आसन के बीच भागपर छिड़के ॥

---

* (व्यासः) कौशेयं कम्बलं चैव आसनं पट्ट मेव च।
दारुजं ताल पत्रं वा आसनं परि कल्पयेत् ॥

† (व्यासः) अविदित्वा ऋषिः छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेद्याजपेद्वा पापीयान् जायते तु सः ॥

इसके अनन्तर (गायत्र्या शिखांबध्वा) *

गायत्री से चुटैया बांधे दूसरा भी मन्त्र बोले । यथा ।

चिद्रूपिणिमहामाये दिव्य तेजः समन्विते ।
तिष्ठदेविशिखाबन्धे तेजोबृद्धिंकुरुष्वमे ॥

अनन्तर दिग्बन्धन करे यथा ॥

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूताविघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम्
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ।
तीक्ष्णदंष्ट्रमहाकाय कल्पान्त दहनोपम ॥
भैरवायनमस्तुभ्य मनुज्ञां दातुमर्हसि ।

इसके अनन्तर आगे लिखे हुए मन्त्र से अपने चारोंतरफ तीन ताल बजा के चुटकी बजावे । यथा

सर्वभूतनिवारकाय शार्ङ्गायसशरायसुदर्शनायास्त्र राजाय हुं फट् स्वाहा (अनन्तर) स्वद-

---

* स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने ।
शिखा ग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद्वै कदाचन ॥
आसने शयने सङ्गे भोजने दन्त धावने ।
शिखा मुक्तिं सदा कुर्या दित्येतन्मनुरब्रवीत ॥
परन्तु खल्वाटने कुशकी शिखा बनाना । (संस्कार भास्करे)
खल्वाटादिक दोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत ।
कौशीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रंथि युतां शिखाम् ।

क्षिणभागे–ओं गुरुभ्योनमः ओं परमगुरुभ्योनमः ओं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः ओं पूर्वसिद्धेभ्यो नमः ओं आचार्येभ्योनमः(स्ववामभागे) ओं गणेशायनमः ओं दुर्गायैनमः ओं क्षेत्रपालाय नमः ओं योगिनीभ्योनमः ओं क्षेत्रेशायनमः ॥

ऊपर लिखे हुए नामों से अपने दक्षिण वामभाग में गंधाक्षत पुष्पसे पूजन करे–अपसर्पन्तु० इस मन्त्र से बाएं पाद की एंड़ी (पार्ष्णि) से तीन बार भूमि में ताड़न करे (मारना–प्रहार) अनन्तर भूशुद्धिः–यथा

भूरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः मातृकादेवताप्रस्तारपंक्तिश्छन्दः भूशुद्धौ विनियोगः ।

अनन्तर भूमि में हाथ रखकर आगे लिखे हुए मन्त्रको पढ़े ।

ॐ भूरसिभूमिरस्यदितिरसिव्विश्वधायाव्विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीय्यच्छपृथिवीन्दृंह पृथिवीम्माहिंसीः ।

अनन्तर भैरव नमस्कारः–

योभूतानामित्यस्यकौण्डिन्यऋषिःअनुष्टुप्छन्दः नारायणो देवता भैरवनमस्कारे विनियोगः

ॐ योभूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधिश्रिताः।यऽईशे महतो महांस्तेन गृह्णामित्वामहंमयि गृह्णामित्वामहम् ।

इति आसनक्रमः* अथानन्तरं भूतशुद्धिः†

स्वाङ्केउत्तानौकरौकृत्वा संमीलितनयनयोर्मू-लाधारात् कुंडलिनीं विषतंतु तनीयसीं तडित्कोटिप्रभां सोमसूर्याग्निरूपिणीं हु मितिसचेतनां विधाय सुषुम्नामार्गेणोत्थाप्य हृदम्बुजे हंस इति जीवेन सहब्रह्मरंन्ध्रातः परमशिवेसंयोज्य पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्वाघ्राण वाक्पाणिपादपायूपस्थ शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध

* यह आसन का क्रम सारांश लिखा गयाहै गायत्रीके अनुष्ठान वाले को या अन्य प्रकार के अनुष्ठान करने वाले को अत्यन्त उपयोगी है जिससे इतना आसन का क्रम न हो सके तो वे पृथ्वीत्वयेति मंत्रस्यारभ्य पवित्रं कुरुचासनम् पर्यन्तही तक कर लेवें ॥

†भूतशुद्धिं विना देवि नाचमनं च सिद्धिदं ।
प्राणायामं ततः प्रोक्तं तस्मात्भूत विशोधनम् ॥

भूतशुद्धि बिना किये आचमन करने को भी अधिकार नहीं है जिन पुरुषों से न होसके तो वे युग्म (दो) प्राणायाम करके तब सन्ध्या या अन्य कर्म प्रारम्भ करें परन्तु देवार्चन में तो अवश्य करना चाहिये ॥

देवोभूत्वायंजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् ।
देवार्चा योग्यता प्राप्त्यै भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥

भूतशुद्धि के सदृश दूसरा कर्म कुछ नहीं है क्योंकि यह योगमार्ग है बिना योग से अन्तःकरण की शुद्धि, जीवात्मा परमात्मा का योग नहीं होता । बिना साधन किये स्वाद नहीं मिलता । केवल पाठ ही करने से अन्तःकरण का भ्रम नहीं निवृत होता ।

ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिव निवृत्तिकला प्रतिष्ठ्यकला विद्याकला शीतिकला शात्यतीताकला प्रकृति मनोबुध्यहङ्कार वचनादानगमन विसर्गानन्देति तत्वानि तत्रलीनानि विचिन्त्य भुवंजले जलमग्नौ अग्निंवायौ वायुमाकाशे आकाशमहङ्कारे महतत्वे महतत्वं प्रकृतौ प्रकृति मात्मनि विप्रलाप्य वामकुक्षिस्थ पापंध्यायेत् ॥

ब्रह्महत्याशिरःस्कन्ध स्वर्णस्तेय भुजद्वयम् ।
सुरापानं च हृदयं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥
तत्संसर्ग पदद्वन्द मङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।
खङ्ग चर्मधरंकुद्धमधौंइचक्रंस्मरेत्ततः ॥

यमिति वायुवीजं कृष्णवर्णं बामनासे विचिन्त्य तस्य षोडशवार जपेन पूरकं तस्य चतुःषष्टिवार जपेनकुम्भकं तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन पापं संशोष्य दक्षनासयारेचनंकुर्यात्॥ र मिति वन्हिबीजं रक्तवर्णंदक्षनासे विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन पूरकं तस्य चतुःषष्टिवार जपेन कुम्भकं कृत्वा स देहं पापं संदह्य तस्यद्वात्रिंशद्वारजपेन तद्भस्म नारेचयेत् ॥ ठ मितिचन्द्रबीजेललाटे विचिन्त्य तस्य षोडशवारजपेन वामनासयापूरयेत् वमि-

तिवरुणवीजं शुक्लवर्णं विचिन्त्य तस्य चतुः षष्टि वारं जपेन कुम्भकं कृत्वा तदुद्भवामृतेनप्लावयेत् ल मिति पृथ्वीवीजं पीतवर्णं विचिन्त्य तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन दक्षनासयारेचयेत् सोहमिति कुंडलिनीं जीवेन सह तेनैवमार्गेण स्वस्थाने समानयेत् ततस्तत्वानि च क्रमेण स्वस्वस्थाने समानयेत् इति ॥ संक्षेपतः भूतशुद्धिः ॥ *

इसके अनन्तर कलश(जलपात्र)में तीर्थों का आवाहन करे–जल पात्र(लोटा)के ऊपर हाथ रखकर आगे लिखे हुये मंत्रोंको बोले "जलपूरितकलशोपरिहस्तौसंस्थाप्यब्रूयात्"†यथा

*यह भूत शुद्धि संक्षेपमें लिखी गई–स्वाङ्के से समानयेत् पर्यन्त उच्चारण करनेमें जो जो विषय कहा है उसको साधक शनैः शनैः क्रमसे भावना किया करै करते २ कुछकालमें इसका अनुभव भासित होने लगताहै तब इसका स्वाद मालूम होगा यदि शीघ्रता की इच्छा हो तो गुरु के समीप कुछ काल अभ्यास करे तब इसका आनन्द अच्छी तरह से मालूम होगा परन्तु इसका स्वाद शीघ्री–आलसी पुरुषों को नहीं मिल सकता।

† कलश में तीर्थों का आवाहन करने को यदि कोई पुरुष कहैं कि क्या देव पूजा करना है? तो क्या सन्ध्या किसी देव पूजा से कम है? कि जिसमें जलही प्रधान है अर्थात्कहीं आचमन कहीं मार्जन और कहीं अर्घ्यादिक हैं ये सब कर्म जलसे ही होते हैं और इन्हीं से शरीर के वाह्याभ्यन्तरमल दूर होते हैं–इससे जल शुद्धि अवश्यही करना चाहिये विना जल शुद्धि के कोई भी कर्मकांड सिद्ध नहीं होता यदि ये सब न हो सकै तो गायत्री से जल अभिमंत्रित कर लेवे और नदीतट पर सन्ध्या करना भया तो वहां भी गायत्री से जल अभिमंत्रित कर लेवे यह कर्मकांड की मर्यादा है।

सर्वेसमुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयन्तुममशांत्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥
कलशस्य मुखेविष्णुः कण्ठेरुद्रसमाश्रितः ।
मूलेतत्रस्थितोब्रह्मा मध्येमातृगणाःस्मृताः
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥
ऋग्वेदोथयजुर्वेदः सामवेदोह्यथर्वणः ।
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥

"इत्यावाह्यवरुणमावाहयेत्"

ओं तत्वायामिब्रह्मणाब्वन्दमानस्तदाशा-स्तेयजमानो हविर्भिः।अहेडमानोवरुणे हबो-ध्युरुशछंसमानऽआयुः प्रमोषीः—

अस्मिन्कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं स शक्तिकमावाहयामि । कलशदेवताभ्योनमः। गन्धाक्षत पुष्पाणि समर्पयामि धेनुमुद्रांप्रदर्श्य

इस आवाहित जलसे शरीर पर मार्जन करके सन्ध्या कर्म आरम्भ करे अर्थात् आगे लिखे हुये मन्त्रों से आचमनादिक करे । प्रथम आचमन का मंत्र यह है ।

विनियोगः

अघमर्षणसूक्तस्याघमर्षणऋषिः अनुष्टुप्छन्दः भाववृतोदेवता अश्वमेधावभृथे विनियोगः ॥

मन्त्रः

ॐ ऋतञ्चसत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततोरात्र्यजायत ततः समुद्रोअर्णवःसमुद्राद-र्णवादधिसंवत्सरो अजायत अहोरात्राणि वि-दधद्विश्वस्य मिषतोवशीसूर्य्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवींचान्तरिक्ष-मथोस्वः *

इस मन्त्र को पढ़कर तीन आचमन करे अनन्तर विनि-योग करके प्राणायाम करे। यथा।

विनियोगः

ओंकारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता शुक्लोवर्णः सर्वकर्मारम्भेविनियोगः ॥

सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिग-नुष्टुप् वृहतीपङ्क्ति त्रिष्टुब् जगत्यश्छन्दांस्यग्नि वाय्वादित्यबृहस्पति वरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवता अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामेविनियोगः ॥

गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सवि-तादेवताअग्निर्मुखमुपनयनेप्राणायामेविनियोगः

*(आपस्तम्ब:) अकार्य करणे चैव अभक्ष्यस्य च भक्षणे।
अघमर्षण सूक्तेन पीत्वाऽपः शुद्ध्यते द्विजः ॥
(मनु:) यथाऽश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपाप प्रणाशनम् ॥

शिरसः प्रजापतिऋषिस्त्रिपदा गायत्रीच्छन्दो ब्रह्माग्निवायु सूर्य्योदेवता प्राणायामेविनियोगः

जहां कहीं विनियोग शब्द आवे वहां जल छोड़ देवे ।

प्राणायाममन्त्रः *

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यं ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ओं आपोज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥

*पद्मासन या स्वस्तिकासन से बैठकर सावधानतासे शरीर को सीधा कर आंख मूंद (नयनोन्मीलित) नासिका के दहिने छिद्र को दहिने हाथ के अंगूठा से दाब कर वाम नासिका के छिद्रसे धीरे २ स्वास को खींचे श्यामवर्ण चतुर्भुज विष्णु भगवान का ध्यान नाभिदेश में करता हुआ स्वास पूरे होते होते तीन बार मन्त्र मन से उच्चारण करे अनन्तर अनामिका मध्यमा से बाएं छिद्र को भी दाब कर उसी खींची हुई स्वास को रोक कर हृदय में कमलासन पर बैठे हुये रक्त वर्ण चतुर्मुख ब्रह्माजी को ध्यान करता हुआ उसी मन्त्र को पुनः तीन बार उच्चारण करे अनन्तर उस रुकी हुई स्वासको अंगूठे को क्रम से छोड़ दहिने छिद्र से धीरे २ माथे (ललाट)में श्वेतवर्ण त्रिनेत्र श्रीशिवजी महाराज का ध्यान करता हुआ तीन बार मन्त्र उच्चारण करते २ छोड़े (यह एक प्राणायाम हुआ) परन्तु प्राणायाम दो से कम न करना चाहिये । पुनः दहिने छिद्रसे उसी स्वास को खंडित न करके पहिले की तरह खींचे (पूरक) पुनः रोक वामसे छोड़े, यह प्राणायाम का क्रम हैं अधिक करना हो तो स्वास को खंडित न करके लोम विलोम क्रम से करता जावे ॥

प्राणायाम के अनन्तर आगे लिखे हुए मन्त्र से तीन आचमन करे ॥

विनियोगः ॥

सूर्यश्चमेति ब्रह्माऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्योदेवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ॥

मन्त्रः

ओं सूर्य्यश्चमामन्युश्चमन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यद्रात्र्या पाप-

---

सव्याहृतिं स प्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिपठे दायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ।
दह्यमानोऽनुतापेन कृत्वा पापानि मानवः ।
शोचमानस्त्वहो रात्रं प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥
यथा पर्वत धातूनां दोषान् हरति पावकः ।
एवमन्तर्गतं पापं प्राणायामेन दह्यते ॥

(कात्यायनः) दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम् ।
कुम्भकेन जपं कुर्यात्प्राणायामो भवेदिति ॥

वाह्यवायोरन्तः प्रवेशनं पूरकः । प्रवेशितस्य धारणं कुम्भकः । धृतस्य वहिर्निः सारणं रेचकः ।

(प्र०पारिजाते) पञ्चांगुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवे नवै ।
मुद्रेयं सर्वपापघ्नी वानप्रस्थ गृहस्थयोः ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः ।

"यह योग विषयक है"—पांचों अंगुली से नासिका कोदाव अर्थात् वायु को न खींचें (पूरक) न छोड़ें (रेचक) शुद्ध कुम्भक कर प्रणव का जपकरें "कालस्य नियमोनास्ति" सामर्थ्य पर्यंत धारणं कर्तव्यमेव पापघ्नी मुद्रा ॥

(अगस्त्यः) प्राणायामैर्विना यद्यत्कृतंकर्मनिरर्थकम् ।
अतो यत्नेन कर्तव्यः प्राणायामः शुभार्थिना ॥

मकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नारात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद् दुरितं मयि इदमहंमाममृतयोनौ सूर्य्येज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥

इस के अनन्तर कुश से मंत्रों के सात भाग से शिर पर आठवें को भूमि पर पुनः नववें को शिर पर मार्जनकरे* यथा

विनियोगः

आपोहिष्ठेत्यादित्र्यृचस्यसिन्धुद्वीपऋषिर्गायत्रीच्छन्दः आपोदेवतामार्जनेविनियोगः ॥

मन्त्रः

ॐ आपोहिष्ठामयोभुवः १ ओं तानऊर्जेदधातन २ ओं महेरणायचक्षसे ३ ओं योवः शिवतमोरसः ४ ओं तस्य भाजयते हनः ५ ओं उशतीरिवमातरः ६ ओं तस्माअरङ्गमामवः ७ ओं यस्य क्षयाय जिन्वथ ८ ओं आपोजन यथाचनः ९

*(छ०प०) रक्षार्थं वारिणात्मानं परिक्षिप्य समन्ततः ।
शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकविन्दुभिः ।
(अङ्गिरा) मार्जनं तर्पणं श्राद्धं न कुर्याद्वारिधारया ॥
(याज्ञवल्क्यः) सर्वतीर्थाऽभिषेकं च ह्यूर्ध्वं संमार्जनाद्भवेत् ।
अधोभागे विसृष्टाभिरसुरायान्ति संक्षयम् ॥
(नारायणोपनिषदि) ये ब्राह्मणाश्त्रिसुपर्णंपठन्ति ते सोमंप्राप्नुवंन्ति । भ्रूणहत्यां वा एतेघ्नन्ति आसाहस्रात्पंक्तिंपुनन्ति

इसके अनन्तर हाथ में जल ले द्रुपदादि मन्त्र को तीन बार पढ़ कर उस जलको शिर पर छोड़े परन्तु तीसरी बार में मन्त्र का अन्त होते दूसरे हाथ से जल को ढाप तब शिर पर छोड़े यथा। विनियोगः

द्रुपदादिवेतिकोकिलो राजपुत्रऋषिरनुष्टुप्छन्दः सौत्रामण्यवभृथे विनियोगः ॥

मन्त्रः

*ॐ द्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पूतंपवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तुमैनसः

इसके अनन्तर हाथ में जल ले नासिका में लगाके मन्त्र को तीन वार या एक बार मन से उच्चारण करता हुआ नासिका के दहिने छिद्र से वायु को खींचे अनन्तर उस वायु को वाम छिद्र से पाप बहिर्गत हुआ ऐसा स्मरण करता हुआ छोड़े, पुनः उस जल को न देखकर वाम भाग में पटक (छोड़) दे यदि जल को भी वायु के संग खींच बाम से छोड़े तो उत्तम पक्ष है (ऐसा हो सकता है—कुछ लोग करते भी हैं)

अघमर्षणसूक्तस्याघमर्षणऋषिःरनुष्टुप्छन्दः भाववृत्तोदेवताअश्वमेधावभृथे विनियोगः॥

मन्त्रः

† ॐ ऋतञ्चसत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततोरात्र्यजायत ततः समुद्रोअर्णवःसमुद्राद-

* (याज्ञवल्क्यः) पुण्या अपः समादाय त्रिःपठेद्द्रुपदादिवम्
तत्तोयं मूर्ध्निविन्यस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते—
द्रुपदा नामसादेवी यजुर्वेदे प्रतिष्ठिता
अन्तर्जलेत्रिरावर्त्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥

†(शौनकः) उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जले गोकर्णवत्कृते

र्णवादधिसंवत्सरो अजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशीसूर्य्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्व्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवींचान्तरिक्षमथोस्वः ॥

इसके अनन्तर आगे लिखे हुये मन्त्र से आचमन करे।

विनियोगः

अन्तश्चरसीति तिरश्चीनऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपोदेवता अपामुपस्पर्शनेविनियोगः ॥

मन्त्रः

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः त्वं यज्ञस्त्वंवषट्कार आपोज्योतीरसोमृतम् ।

इसके अनन्तर गन्धाक्षतपुष्प सहित सूर्यनारायणको गायत्री पढ़कर ३ अर्घ्य देवे परन्तु तर्जनी अंगूठेको अंजलीमें न स्पर्श करे।

ओं महाव्याहृतीनां परमेष्ठीप्रजापतिर्ऋषिः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि अग्निवाय्वादित्या देवताः गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सवितादेवतासूर्यार्घ्यदानेविनियोगः ॥

निश्वास नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्मरेत्
ऋतञ्चेतिऋचंवापि द्रुपदां वा जपेद्दयम् ।
दक्षनासा पुटे नैव पाप्मानमपसारयेत्
तज्जलं नावलोक्याथ वामभागेक्षितौ क्षिपेत्
(कात्यायनः) करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राण मासज्य तत्र च ।
जपेद् नियतः सर्वाभिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥

*अर्घ्य मन्त्रः

ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ओं ।

इसके अनन्तर दो या सात प्रदक्षिणा† करके एक पैर से हाथ जोड़ या अंजली करके आगे लिखे हुए मन्त्र से सूर्य का उपस्थान (स्तुति) करे । (कहीं उपस्थान के अनन्तर प्रदक्षिणा कहा है और कहीं गायत्री जप के पश्चात प्रदक्षिणा कहा है)

---

* (व्यास:) कराभ्यांतोयमादाय गायत्र्याचाभि मंत्रितम् ।
आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वंसन्ध्ययोः क्षिपेत् ॥
सकृदेव तु मध्यान्हे क्षेपणीयं द्विजातिभिः ।
(संग्रहे) गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृति पूर्वकाम्
प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन् क्षिपेद्वा अंजलित्रयम्
(कात्यायनः) उत्थायार्कं प्रक्षिप्रोहेत्त्रिकेनांजलिनाम्भसा
(अन्यच्च) प्रातर्मध्यान्हयोः सन्ध्यांस्तिष्ठन्नेव समापयेत्
उपविश्यं तु सायान्हे क्षलेह्यर्घ्यंन्नन्निक्षिपेत्
एकंवाहन नाशाय द्वितीयं शस्त्रनाशनम् ॥
असुराणांवधार्थाय तृतीयार्घ्यं विदुर्बुधाः ।
(अर्घ्यंमुद्रा–संग्रहे) मुक्त हस्तेनदातव्यं मुद्रां तत्र न कारयेत्
तर्जन्यंगुष्ठयोगे तु राक्षसी मुद्रिकास्मृता
राक्षसी मुद्रिकार्घ्यंचेत्तत्तोयं रुधिरं भवेत्
द्वौपादौ समौ कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलीन्
गोशृङ्गमात्र मुत्क्रम्य जल मध्ये जलं क्षिपेत्
(तीनों अर्घ्य का विनियोग, न्यास, ध्यान,मंत्र अन्य प्रकार का तंत्रोक्त मेरे पास है परन्तु संकेतके कारणलिख नहीं सका)

† एकाचण्ड्यारवेःसप्ततिस्त्रः कार्या विनायके ।
हरेश्चतस्त्रःकर्तव्याः शिवस्यार्धं प्रदक्षिणा ॥
(वहृचपरिशिष्टे) एकांविनायके कुर्याद्द्वे सूर्ये तिस्त्रईश्वरे ।
चतस्त्रः केशवे कुर्यात्सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणाः ॥

विनियोगः

उद्वयमित्यस्य हिरण्यस्तूपऋषिर्गायत्रीछन्दः सूर्योदेवतासूर्योपस्थानेविनियोगः ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्वऋषिर्गायत्रीछन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ॥

चित्रमित्यस्य कौत्सऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्योदेवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ॥

तच्चक्षुरित्यक्षरातीतपुरउष्णिक्छन्दोदध्यङ्ङाथर्वणऋषिः सूर्योदेवता सूर्योपस्थानेविनियोगः ॥

मन्त्रः

*ॐ उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्तउत्तरम् । देवंदेवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्तिकेतवः दृशेविश्वायसूर्यम् ॥

---

* (याज्ञवल्क्यः) गायत्र्यास्तु जपं कृत्वा पूर्वं चैव यथा विधि ।
उपस्थानं स्वकैर्मन्त्रैरादित्यस्य तु कारयेत् ॥
उदुत्यं चित्रं देवानामुद्वयन्तमसस्परि
तच्चक्षुर्देव इति च एक चक्रेति वैधि च
उदगादित्ययं मंत्र आकृष्णेति वै ऋचा
धृतात्मा संप्रयुञ्जीत शक्त्यान्यानिजपेत्सदा
सन्ध्याद्वयेप्युपस्थान मेवमाहुर्मनीषिणः
मध्यान्हे उदये चैव विभ्राडादोच्छया भवेत्
तदसंयुक्त पार्ष्णिर्वा एकपादोद्विपादपि ।
अथैस्कृताञ्जलिर्वाऽपि ऊर्ध्वबाहुरथापि वा ।
(अत्रिः) आदित्योपस्थानादिह कृतैश्च पापैः प्रमुच्यते

ॐ चित्रंदेवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्यावापृथिवीअन्तरिक्षछं सूर्यआत्माजगतस्तस्थुषश्च ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत पश्येमशरदः शतञ्जीवेमशरदः शतछंशृणुया-मशरदः शतंप्रब्रवामशरदः शतमदीनाःस्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

इसके अनन्तर बैठकर आगे लिखे हुये क्रमसे गायत्रीका न्यास* करे

ओं भूः अंगुष्ठाभ्यांनमः ओं भुवः तर्जनीभ्यां नमः ओं स्वः मध्यमाभ्यांनमः ओं तत्सवितुर्वरे-ण्यं अनामिकाभ्यां नमः ओं भर्गोदेवस्य धीमहि कनिष्ठिकाभ्यांनमः ओं धियोयोनः प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यांनमः ॥ ओं भूः हृदयाय नमः ओं भुवः शिरसे स्वाहा ओं स्वः शिखायैवषट् ओं तत्सवितुर्वरेण्यं कवचायहुम् ओं भर्गोदेवस्य धी-महिनेत्रत्रयायवौषट् ओं धियोयोनः प्रचोदयात् अस्त्रायफट् "अथानन्तरं अक्षरन्यासः"

*(तन्त्रान्तरे) न्यासेन नितरां देहे आस्यमन्त्राक्षराणि च ।
मन्त्राकृतिर्भवत्नित्यं साधक सिद्धिमाप्नुयात् ॥
न्यासं विना कृता मन्त्र क्रिया सर्वाविनिष्फलाः
तस्मान्न्यासः प्रकर्त्तव्यो मन्त्रागत फलेप्सुभिः ॥

ओं तकारंपादांगुष्ठयोः ओं सकारंगुल्फयोः ओंविकारं जंघयोः ओं तुकारं जान्वोः ओं वकारं ऊर्वोः ओंरेकारं गुदे ओं णकारं लिङ्गे ओं यकारं कट्याम् ओं भकारं नाभौ ओं गोकारं उदरे ओं देकारंस्तनयोः ओं वकारं हृदये ओं स्यकारं कंठे ओं धिकारं मुखे ओं मकारं तालु देशे ओं हिकारं नासिकाग्रे ओं धिकारं नेत्रयोः ओं योकारं भ्रुवोर्मध्ये ओं द्वितीययोकारं ललाटे ओं नकारं पूर्व मुखे ओं प्रकारं दक्षिणमुखे ओं चोकारं पश्चिम मुखे ओं दकारं उत्तरमुखे ओं याकारं मूर्ध्नि ओं व्यञ्जनतकारं व्यापकं सर्वतोन्यसेत् ॥

इसके अनन्तर गायत्री के जप निमित आगे लिखे हुये क्रम से विनियोग करे

विनियोगः

ओंकारस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दोऽग्निर्देवता शुक्लोवर्णोजपे विनियोगः ॥

त्रिव्याहृतीनांप्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसिअग्निवाय्वादित्यादेवताजपे विनियोगः ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः गायत्री छन्दः सवितादेवता वायव्यंवीजम् चतुर्थंशक्तिः पञ्चविंशतिर्व्यञ्जनानिकीलकं चतुर्थंपदम् प्रणवो अग्निमुखं ब्रह्माशिरः विष्णुर्हृदयम्

रुद्रःकवचम् परमात्माशरीरम् श्वेतवर्ण्य साङ्ख्यायनगोत्रा षट्स्वराः सरस्वती जिह्वा पिङ्गाक्षी त्रिपदा गायत्री अशेषपापक्षयार्थे जपेविनियोगः

इसके अनन्तर हाथ में पुष्प ले या हाथ जोड़ कर आगे लिखे हुये रूप का ध्यान करे ॥

ध्यानम् ॥

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्वात्मवर्णात्मिकां
गायत्रींवरदाभयांकुशकशा शुभ्रं कपालंगुणं
शङ्खंचक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

इसके अनन्तर गायत्री का आवाहन* करे

विनियोगः

तेजोसीतिदेवाऋषयः शुक्रं दैवतं गायत्रीच्छन्दो गायत्र्या वाहने विनियोगः ॥

मन्त्रः

ॐ तेजोसिशुक्रमस्यमृतमसिधामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥

इसके अनन्तर आगे लिखे हुये मन्त्र से उपस्थान करे ।

---

* देवता न च संतुष्ठा सर्वदा संमुखी भवेत
अंगुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं मुद्रात्वावाहनी मता
संग्रध्यनिक्षिपेत्सेयं मुद्रात्वा वाहनीस्मृता

विनियोगः

तुरीयपदस्य विमलऋषिः परमात्मादेवता गायत्रीछन्दः गायत्र्युपस्थाने विनियोगः ॥

मन्त्रः

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परो रजसे सावदोम् ॥

इसके अनन्तर आगे लिखे हुये क्रम से शापमोचन करे

*अस्य श्रीब्रह्मशापविमोचनमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः गायत्रीशक्तिर्देवता ब्रह्मशापविमोचनार्थे जपे विनियोगः ॥

गायत्रीं ब्रह्मेत्युपासीतयद्रूपंब्रह्मविदोविदुः तांपश्यन्तिधीराःसुमनसावाचमग्रतः ॐ वेदान्तनाथायविद्महे हिरण्यगर्भायधीमहि तन्नो ब्रह्मप्रचोदयात् ओं देवी गायत्रीत्वं ब्रह्मशापाद्विमुक्ताभव ॥

अस्य श्री वशिष्टशापविमोचन मन्त्रस्य निग्रहानुग्रह कर्तावशिष्टऋषिःवशिष्ठानुगृहीता गा-

* शापयुक्ता तु गायत्री सफला न कदाचन ।
शापादुत्तरिता सा तु भुक्ति मुक्ति फलप्रदा ॥
मतांतर से शापमोचन कई प्रकार का है परन्तु मुख्य तीन है इसचे अवश्य करना चाहिये

यत्रीशक्तिर्देवता विश्वोद्भवागायत्रीछन्दःवशिष्टशापविमोचनार्थे जपेविनियोगः ॥

ॐ सोहमर्कमयंज्योतिरात्मज्योतिरहं शिवः आत्मज्योतिरहंशुक्रः सर्वज्योतीरसोऽस्म्यहम् । ॐ देवीगायत्रीत्वंवशिष्टशापाद्विमुक्ताभव ॥

अस्य श्रीविश्वामित्र शापविमोचन मन्त्रस्य नूतनसृष्टिकर्ता विश्वामित्रऋषिः विश्वामित्रानुगृहीतागायत्रीशक्तिर्देवता वाग्देहा गायत्रीछन्दःविश्वामित्र शापविमोचनार्थे जपेविनियोगः गायत्रींभजाम्यग्निमुखीं विश्वगर्भांयदुद्भवाः देवाश्चक्रिरे विश्वसृष्टिंतांकल्याणी मिष्टकरीं प्रपद्ये यन्मुखान्निसृतोऽखिलवेदगर्भः ॐ देवी गायत्रीत्वं विश्वामित्रशापाद्विमुक्ताभव ॥

इसके अनन्तर २४ मुद्रा करे

मुद्रा

*सुमुखं १ संपुटं २ चैव विततं विस्तृतं ३ तथा एक ४ द्वि ५ त्रिमुखं ६ चैव चतुः ७ पञ्चमुखं ८ तथा षण्मुखाऽ ९ धोमुखं १०

*एता मुद्रा न जानाति गायत्री निष्फला भवेत् ।

चैव व्यापकाञ्जलि ११ कं तथा शकटं १२ यमपाशं १३ च ग्रथितं १४ चोन्मुखोन्मुखम् १५ प्रलंबं १६ मुष्टिकं १७ चैव मत्स्यः १८ कूर्म १९ बराहकौ २० सिंहाक्रांतं २१ महाक्रांतं २२ मुद्गरं २३ पल्लवं २४ तथा एता-मुद्राश्चतुर्विंशज्जपादौ परिकीर्त्तिताः ॥

इन मुद्राओं को करके अनन्तर गायत्री से तीन आचमन करे यथा।

ओं तत्सवितुर्वरेण्यं स्वाहा ओं भर्गो देवस्य धीमहि स्वाहा ओं धियोयोनःप्रचोदयात्स्वाहा

इस क्रमसे तीन आचमन करके अनन्तर सावधान * हो रुद्राक्षों की माला गोमुखी में स्थापित या वस्त्र से आच्छा-दित (ढांप-मूंद) कर मन्त्र के अर्थ को समझता हुआ तीनों पद को भिन्न २ उच्चारण करता एकाग्र चित्त से पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख करके गायत्री का जप करे चाहे कोई काल हो

* (शङ्खः) कुशमयासनासीनः कुशोत्तरीयवान् कुश पवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा अक्षमालामादाय देवताध्यायी जपं कुर्यात्।

† अतिस्थूलोति सूक्ष्मश्चस्फुटितो भङ्गुरिर्लघुः।
भिन्नः पुराधृतोजीर्णो रुद्राक्षोवरदःस्मृतः।
(स्कान्दे)रुद्राक्षमालयाजप्तो मन्त्रोनन्तफलप्रदः ॥

अनामिकादि द्वयं पर्व कनिष्ठादिक्रमेण न च
तर्जनी मूल पर्यन्तं करमाला प्रकीर्त्तिता

गायत्री जपस्वरूपम्

❀ ओं भूर्भुवःस्वः ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनःप्रचोदयात् ओं ॥

(अ०का०) मध्यमादि द्वयं पर्व जपकाले तु बर्जयेत
तं वै मेरु विजानीयात कथितं ब्रह्मणापुरा
गुरुं प्रकाशयेद्धीमान् मन्त्रं नैव प्रकाशयेत्
अथमालां च मुद्रांश्च गुरुं नैव प्रदर्शयेत्

अर्थात् माला और मुद्रा को यत्न से गुप्त रक्खे इसी वास्ते गोमुखी में या कपड़े से ढांप के माला रखना चाहिये। गुरु अपना बतलावे परन्तु मन्त्र किसी से न बतलावे। और माला-मुद्रा को इस तरह गुप्त रक्खे कि गुरु भी न देखे।

(यतःमन्त्रस्यपुंस्त्वं मालायाःस्त्रीत्वं च तयोः संयोगीरहस्यैव भवति)

*(स्मृत्यन्तरे) सम्पुटैकषड़ोङ्कारा गायत्री त्रिविधामता।
तत्रैकप्रणवाग्राह्या गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः ॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च प्रणवाद्यामिमांजपेत्
अन्तेयः प्रणवं कुर्यान्नासौ वृद्धिमवाप्नुयात्
सम्पुटां च षड़ोंकारां गायत्रीं च जपेद्यतिः

(गायत्री पंचाङ्गे) धर्मशास्त्र पुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत
पञ्चप्रणवसंयुक्तां जपे दित्यनुशासनम्

(विश्वामित्र कल्पे) ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवस्वस्तथैव च
गायत्री प्रणवान्तां च सध्येत्रिप्रणवां तथा

(मनुः) ओंकारः पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवस्वस्तथैव च
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपएवमुदाहृतः
प्रणवोभूर्भुवःस्वश्च पुनः प्रणवसंयुतम्
अन्त्योंकार समायुक्तं मन्यन्ते कवयोऽपरे

(तीन प्रणव लगाके गायत्रीका जप करना यह बहुतोंका सम्मतहै)

यथाशक्ति जप करके (तीनमाला से कम कभी भी ब्राह्मण जप न करे) अनन्तर गोमुखी शिर पर रख गायत्री से तीन आचमन कर के आठ मुद्रा करे।

मुद्रा

सुरभि १ ज्ञान २ वैराग्यं ३ योनिः ४ शंखो ५ थ पङ्कजं ६ लिङ्ग ७ निर्वाण ८ मुद्रेति जपान्तेष्टौ प्रदर्शयेत् ॥

इन मुद्राओं को करके हाथ में जल ले आगे लिखे हुये वाक्य से जल छोड़ देवे

गुह्याति गुह्यगोप्तृत्वं गृहाणास्मत्कृतं जपं सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि

इसके अनन्तर गायत्री से षडंगन्यास करे पश्चात गोमुखी शिर पर से उतार कर सूर्य को आगे लिखे हुये मन्त्र से नमस्कार करे।

एकचक्रइत्यस्यनारायणऋषिःउष्णिकूछन्दः सूर्यो देवता सूर्यनमस्कारे विनियोगः

एकचक्रो रथो यस्य दिव्यः कनक भूषितः सम्मे भवतु सु प्रीतः पद्म हस्तो दिवाकरः

ओं गायत्र्यैनमः ओं सवित्र्यैनमः ओं सन्ध्यायैनमः ओं सरस्वत्यै नमः ओंदिग्देवताभ्योनमः

भिन्न पादा तु गायत्री ब्रह्महत्या प्रणाशिनी
अभिन्न पादा गायत्री ब्रह्महत्यांप्रयच्छति
अच्छिन्न पादं गायत्रीं जपं कुर्वन्ति ये द्विजाः।
अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति कल्पकोटि शतानि च ॥

इसके अनन्तर हस्त में जल लेकर अर्पण करे (जलछोड़े)

अनेनप्रातः सन्ध्याङ्गभूतेनामुकसंख्याकेन अथवा यथाशक्ति गायत्री मन्त्र जपाख्येन कर्मणा श्रीभगवानब्रह्म स्वरूपी सूर्यनारायणः प्रीयतां तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ पश्चात् विसर्जन करे । यथा

उत्तरेशिखरे इत्यस्यकस्यपऋषिःअनुष्टुप्छन्दः सन्ध्यादेवता सन्ध्याविसर्जने विनियोगः ।

* ओं उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्द्धनि ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञातागच्छदेवि यथासुखम्

स्तुतामयावरदावेदमाता प्रचोदयन्तीपवने। द्विजाता । आयुः पृथिव्यां द्रविणं ब्रह्मवर्चसं महयंदत्वा प्रजातुं ब्रह्मलोकम् ॥

अनन्तर शिखा की ग्रन्थि (चुटैया की गांठ) छोड़ देवे

मन्त्रः

ब्रह्मशाप सहस्राणि रुद्रशूलशतानि च ।
विष्णुचक्रसहस्रेणशिखामुक्तिं करोम्यहम् ॥

इस मन्त्र से ग्रंथि को छोड़ पुनः बद्ध (बांध) कर लेवे कुश पवित्र का त्याग करे गायत्री कवचादि का पाठ करना हो तो इच्छानुसार पाठ करे अनन्तर जब आसन से उठना हो तो आसन के नीचे जल छोड़कर वहांकी मृत्तिका माथे में लगा लेवे न लगाने से इन्द्र जप को हर लेता है ॥

यस्मिन्स्थाने जपं कृत्वा शक्रो हरतितज्जपम् ।
तन्मृदा लक्ष्मकुर्वीत ललाटेतिलकाकृति । इति प्रातःकृत्यम् (संध्या)

* यह नारायण उपनिषद् में दोनों मन्त्र हैं ।

त्रिकाल गायत्री ध्यानम् (प्रातः)

ब्रह्माणीचतुराननाक्षवलया कुम्भस्तना स्रुक् स्रुचं
बिभ्राणारुणकांति रिन्दुवदनासृग्रूपिणीबालिका
हंसारोहणिकेलिरंबरमणे बिम्बाश्रिताभूतिदा
गायत्रीहृदिभाविता भवतुनः संपत्समृद्ध्यैसदा १

(मध्यान्हे)

रुद्राणीनवयौवनात्रिनयनावैयाघ्रचर्माम्बरा
खट्वांगत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाभूत्यैश्रियै चास्तुनः
विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिर्मुदा
सावित्रीवृषबाहनाशिवतनुर्ध्येयायजूरूपिणी २

(सायं)

ध्येयासाचसरस्वती भगवतीपीताम्बरालंकृता
श्यामातन्विजयादिभिःपरिलसद्गात्राञ्चितावैष्णवी
तार्क्ष्यस्थामणिनूपुराङ्गदशत ग्रैवेयभूषोज्वला
हस्तालङ्कितशङ्खचक्रसुगदा भूत्यैश्रियैचास्तुनः ३

(मध्यान्ह और सायंकाल)

मध्यान्ह और सायंकालमें सब कर्म प्रातः सन्ध्याके सदृशही करना चाहिये केवल संकल्प और प्राणायाम के अनन्तर आचमन का जो मंत्र है "सूर्यश्चमामन्युश्च" इसकी जगह—मध्यान कालमें "आपःपुनन्तु" और सायंकाल में "अग्निश्च" मन्त्र से आचमन करे शेष पूर्ववत् है और जिसको ध्यान त्रिकाल का भिन्न भिन्न करना हो तो वे ध्यान की जगह ध्यान बदल देवें ॥ मध्यान्ह में एक अर्घ्य देवे सायं प्रातः तीन तीन—

(व्यासः) गायत्रीनामपूर्वान्हे सावित्रीमध्यमे दिने
सरस्वती च सायान्हे एवं संध्यात्रिधा मता

मध्यान्हाचमनम् ।

आपः पुनन्त्वितिमन्त्रस्य नारायणऋषिः गायत्री छन्दः आपो देवता आचमने विनियोगः ।

ओं आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवीपूतापुनातु मां पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूतापुनातुमाम् यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वादुश्चरितं मम सर्वं पुनन्तु मामापोसतां च प्रतिग्रहछंस्वाहा । इति मध्यान्हाचमनम्

सायान्हे आचमनम् ॥

अग्निश्चमेति रुद्रऋषिः प्रकृतिश्छन्दः अग्नि र्देवता आचमने विनियोगः

ओं अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यदन्हा पापमकार्षं मनसावाचा हस्ताभ्यां पद्भ्या मुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु यत्किंचिद् दुरितं मयि इदमहंमाममृतयोनौ सत्येज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥ इति सायमाचमनम्

कात्यायनादि परिशिष्टसूत्रोक्त संक्षेपत-स्त्रिकालसन्ध्याप्रयोगः

(का० प० सूत्रे)

उत्तीर्यधौतेबाससी परिधायमृदोरुकरौ प्रक्षाल्याचम्य–त्रिरायम्यासून् पुष्पाण्यम्बुमिश्राण्यूर्ध्वंक्षिप्तोर्ध्वबाहुः सूर्यमुदीक्षन्नुद्वयमुदुत्यं चित्रंतच्चक्षुरिति गायत्र्या च यथाशक्ति ।

(पा० गृ० सूत्रे)

वाक्प्राणश्चक्षुःश्रोत्रं यशोबलमिति त्र्यायुषाणि करोति–

आदौ भस्म धारणम् ॥ ओं त्र्यायुषंजमदग्नेः ललाटे कश्यपस्यत्र्यायुषम् ग्रीवायाम् यद्देवेषु त्र्यायुषम् दक्षिणांसे तन्नोअस्तुत्र्यायुषम् हृदये

अनन्तरम् आचमनम्

ओं आमागन्यशसासछंसृजवर्चसा तंमाकुरु प्रियं प्रजानामधपतिं पशूनामरिष्टं तनूमाम् ।

इस मंत्र से तीन आचमन करे (अनन्तरम् प्राणायामः)

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यं ओं तत्ससवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ओंआपोज्योती रसोमृतंब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥

(एवं त्रिवारं प्राणायामः कर्त्तव्यः)

अर्थात् पूरक में तीन कुम्भक में तीन रेचक में तीन बार उच्चारण करे ॥

न्यासः ॥ बाङ्गआस्येऽस्तु—मुखं कराग्रेणस्पृशेत् नसोर्मेप्राणोस्तु—तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां नासारन्ध्रद्वयंस्पृशेत अक्ष्णोर्मेचक्षुरस्तु—अनामिकांगुष्ठाभ्यांचक्षुर्द्वयंस्पृशेत कर्णयोर्मेश्रोत्रमस्तु—मध्यमांगुष्ठाभ्यां उभयकर्णौ स्पृशेत बाव्होर्मेबलमस्तु कराग्रेणबाहुद्वयंस्पृशेत ऊर्वोर्मेओजोऽस्तु—युगपद्धस्ते नोरूस्पृशेत् अरिष्टानिमेङ्गानितनूस्तन्वामेसह—शिरः प्रभृतिपादान्तानिसर्वाङ्गान्युभाभ्यांहस्ताभ्यामालभेत(इस क्रमसे न्यास करे अनन्तर)

सङ्कल्पः—ओं तत्सत्परमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः सन्ध्योपासनमहं करिष्ये ॥ अनन्तरम् अर्घ्यम् ॥

"सुपुष्पाण्यम्बुमिश्राण्यूर्ध्वं प्रक्षिप्य" अर्थात् पुष्पजल मिला कर गायत्री से तीन अर्घ्य देवे।

ओं भूर्भुवः स्वः ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ओंसवित्रेनमः

इति गायत्री मन्त्रेणार्घ्यत्रयंदद्यात् "सूर्योपस्थानम्" खड़े होकर हाथ उठा के मंत्र बोले ॥

मन्त्रः

ओं उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्तउत्तरम्। देवंदेवत्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम्।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्तिकेतवः दृशेविश्वायसूर्यम् ॥

ॐ चित्रंदेवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्यावापृथिवीअन्तारिक्षछं सूर्यआत्माजगतस्तस्थुषश्च ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत पश्येमशरदःशतञ्जीवेमशरदःशतछंशृणुयाम-शरदःशतंप्रब्रवामशरदःशतमदीनाःस्यामशर-दः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

(गायत्री मन्त्रजपः)

इसके अनन्तर बैठ कर यथाशक्ति गायत्री का जप करे ।

जपान्ते उपस्थानम् ॥ खड़ा होकर ओं विभ्राड बृहत० ऋचा १७ ओं सहस्रशीर्षा० १६ ऋचा ओंय-स्याग्रतो ६ ऋचा ओं यदेत्तन्मण्डलंतपति० १३ ऋचावा १ ऋचा बोले ॥ "इत्युपस्थायप्रदक्षिणी कृतय नमस्कृत्योपविशेत्"

अर्थात् इस प्रकार उपस्थान कर प्रदक्षिणा करे नमस्कार करके बैठ जावे अनन्तर हाथ में जल लेकर अर्पण करे ।

अनेन यथाशक्ति गायत्री जपादिकृतेन ब्रह्म-स्व रूपी सविता देवता प्रीयतां ओं तत्सद्ब्रह्मा-र्पण मस्तु ॥ इति कात्यायनादिपरिशिष्टसूत्रोक्त-त्रिकाल सन्ध्या प्रयोगःसमाप्तः ॥

इसमें ध्यान आवाहन नहीं है इससे इसी क्रम से तीनों कालमें करना चाहिये—यह सन्ध्या संक्षेपमें प्रमाण सहित लिखी गई जिन पुरुषोंको विस्तार से न होसके वे इस प्रमाणसे करैं।

* गायत्री स्वरूपम्

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

चतुर्विंशाक्षराणि

१ त २ त्स ३ वि ४ तु ५ व ६ रे ७ णि ८ यं ९ भ १० र्गो ११ दे १२ व १३ स्य १४ धी
१५ म १६ हि १७ धि १८ यो १९ यो २० नः २१ प्र २२ चो २३ द २४ यात्

पदच्छेदः

तत् सवितुः वरेण्यम् भर्गः देवस्य धीमहि धियः यः नः प्रचोदयात्

* यह गायत्री का अर्थ प्रयोजन मात्र लिखा गया है क्योंकि ये मूल प्रकृति महामाया की आराधना (जप) करने से आप से आपही (स्वयं) उत्तम बोध हो जाता है दिव्य दृष्टि हो जाती है सिद्धियों की स्फूर्तियां होने लगती हैं—मूर्ख भी सुबोध पंडित हो जाता है लोगों में मान्यवर हो जाता है। इससे पदों को अलग २ कर चित्त की सावधानता से जप करना चाहिये—चंचलता करने में कुछ गुण नहीं है।

अन्वयः

३ १ ४ ५ २ ६ ९ ७ ८
तत्सवितु वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः
१०
प्रचोदयात्

सवितुः कर्म्मणिजगतां प्रवर्तकस्य देवस्य दिव्यगुणवतो भगवतस्तत्प्रत्यक्षं प्रसिद्धं वा वरेण्यं सर्वावरकं सर्वतश्श्रेष्ठं वा भर्ग्गोज्योतिर्धीमहि ध्यायेम यो भगवानादित्यो नोऽस्माकं धियः प्रज्ञाः प्रचोदयात् प्रेरयेत् ॥

अर्थ

लोगों को कर्म्ममें लगाने वाले दिव्य गुणयुक्त भगवान की इस सर्वप्रसिद्ध प्रत्यक्ष ज्योति का ध्यान करें जो भगवान सूर्य्य रूप से हम लोगों की बुद्धि को अच्छे कामों में लगाते हैं॥

संक्षेपतः यज्ञोपवीत धारणविधिः ॥

प्रथम आचमन करके प्राणायाम करे अनन्तर इस कल्पना से संकल्प करे।

ममश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं संस्कार पूर्वक नवीन यज्ञोपवीत धारणमहं करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प करके यज्ञोपवीत (जनेऊ) को प्रक्षालन करे (धोय डाले) अनन्तर दश गायत्री से यज्ञोपवीत परमार्जन करके नव तंतु का आवाहन करे।

ऊों ऊोंकारं प्रथमतन्तौन्यसामि–ऊों अग्निं द्वितीयं तन्तौन्यसामि–ऊों नागान् तृतीयं तन्तौन्यसामि–ऊों सोमंचतुर्थं तन्तौन्यसामि–ऊों पितॄन्पंचमंतन्तौन्यसामि–ऊों प्रजापतिं षष्ठं त० ऊों वायुं सप्तमंतन्तौन्यसामि–ऊों सूर्यंअष्टमं त० ऊों विश्वान् देवान् नवमसं० ॥

पश्चात ग्रन्थि (गांठ) में ब्रह्मा विष्णु महेश का आवाहन करे पश्चात ऊोंतच्चक्षुर्देवहितंपुरस्तात० इस मन्त्र से दर्शित करे (दिखावे) पश्चात यज्ञोपवीत का पूजन करे वा (मानसोपचारैःसंपूज्य) ध्यान करे

प्रजापतेयत्सहजं पवित्रं कार्पाससूत्रोद्भवं ब्रह्मसूत्रम्। ब्रह्मत्वसिद्ध्यै च यशः प्रकाशंजपस्य सिद्धिं कुरुब्रह्मसूत्रम् ॥ पश्चात विनियोग करे ॥

यज्ञोपवीतमितिमन्त्रस्य परमेष्ठीऋषिःलिङ्गोक्ता देवता त्रिष्टुप्छन्दः यज्ञोपवीत धारणे विनियोगः ॥

ॐ यज्ञोपवीतम्परमम्पवित्रम्प्रजापतेर्यत्सहजम्पुरस्तात्—आयुष्यमग्र्यम्प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतम्बलमस्तु तेजः ॥ ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वायज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

इस मंत्र को पढ़ आचमन करके जनेऊ पृथक् २ धारण करे पुनः आचमन कर यथाशक्ति गायत्री जपकर शिर से त्याग करे

मन्त्र

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्मत्वं धारितं मया
जीर्णत्वात्त्वत्परित्यागो गच्छसूत्र यथा सुखम्

इस मंत्र से निकाल कर जल में प्रवाह करै पश्चात् गायत्री जप का अर्पण करे यथा ।

अनेन नवयज्ञोपवीतधारणार्थे कृतेन यथाशक्ति गायत्रीजपकर्मणा श्रीसविता देवता प्रीयतां तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

अथ वैश्वदेवप्रयोगः ॥

आचम्य प्राणानायम्य "संकल्पः"

आचमन प्राणायाम करके संकल्प करे यथा।

अद्यपूर्वोच्चारित एवंगुणविशेषैण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ममगृहेपञ्चसूनाजनित सकलदोष परिहारपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठानसिद्धि द्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थ पञ्चमहायज्ञैरहं यक्ष्ये ॥

इस प्रकार संकल्प करके पवित्रेस्थोवै० इस मंत्रसे अनामिका में कुश पवित्र धारण करके जिस अग्निसे पाक (रसोई) हुआहो उस अग्नि को ले उसमें से "हुंफट् इति मंत्रेणक्रव्यादांशअग्निंनैऋत्यांदिशिक्षिपेत्" उक्त मंत्र बोलकर थोड़ी अग्नि निकाल कर नैऋतिकोण में फेंक दे अनन्तर ॥

ॐ अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः अनुसूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननुद्यावा पृथिवीऽआततन्थ ॥

इस मंत्रसे अग्नि कोले "कुंडेवास्थण्डिले अग्निं संस्थाप्य" कुंडहो वा वेदी हो उसपर स्थापन (रखना) करता हुआ

ॐ पृष्टोदिवि पृष्टोअग्निः पृथिव्यां पृष्टोविश्वा ओषधी राविवेश। वैश्वानरः सहसापृष्टो अग्निः सनोदिवासरिषस्पातुनक्तम् ॥

इस मंत्र को बोले ॥ पश्चात "अग्निंवेणुधमन्याप्रबोधयेत्" बांस की पूपली या हाथ के आधार से फूंके।

तत्र मन्त्राः ॥

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं०। ओं ताछंसवितुर्व्वरेण्यस्य चित्रामाहंवृणे सुमतिंविश्वजन्याम् जामस्यकण्वोअदुहत्प्रपीनाछंसहस्रधारां पयसामहींगाम्। ओं विश्वानिदेवसवितुर्दुरितानि परासुव यद्भद्रन्तंनआसुव॥

अनंतर अग्नि का ध्यान करे यथा।

चत्वारि शृङ्गात्रयो ऽअस्यपादाद्वेशीर्षेसप्तहस्तासो ऽ अस्य। त्रिधाबद्धोव्वृषभो रोरवीति महोदेवोमर्त्याँ आविवेश। ओं एषोहदेवःप्रदिशोनुसर्वाःपूर्वोहजातःसउगर्भेअन्तः स एव जातः सजनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः मुखंयः सर्वदेवानांहव्यभुक्कव्यभुक्तथा पितृणांचनमस्तस्मै विष्णवेपावकात्मने "पावकनाम्ने वैश्वानरायनमः"

ध्यान करके पावकनाम्ने० इस मंत्रसे अग्नि का पंचोपचारपूजन करे (पूजन द्रव्य से या जलहीसे) अनन्तर आगेके मंत्रसे जल छोड़े

अग्नेशांडिल्यगोत्रमेषध्वजप्रांमुखसंमुखोभव॥

ततः प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्यइतरथातदावृत्तिः

मध्यमानामिकांगुष्ठैर्घृत प्रोक्षितौदनस्यबदरीफलप्रमाणाः आहुतीर्जुहुयात् ॥

अग्निको जल से पर्युक्षण (जल चारों तरफ धारा की सरह छोड़ना) करके वैर के फल समान आहुती देवे ॥

ओं भूः स्वाहा इदमग्नये१ ओंभुवः स्वाहा इदं वायवे २ ओं स्वःस्वाहा इदंसूर्याय३ ओंभूर्भुवः स्वः स्वाहा इदंप्रजापतये ४ ओं देव कृतस्यैनसोवैयजनमसि स्वाहा इदमग्नये ५ ओं मनुष्य कृतस्यैनसोवैयजनमसि स्वाहा इदमग्नये ६ ओं पितृ कृतस्यैनसो वैयजनमसि स्वाहा इदम० ७ ओं आत्म कृतस्यैनसोवैयजनमसि स्वाहा इदमग्नये८ओंएनसऽएनसोवैयजनमसिस्वाहा इदम०९यच्चाहमेनोऽविद्वांश्चकारयच्चाऽविद्वांस्तस्यसर्व्वस्यै नसोवैयजनमसिस्वाहा इदम० १० ओं प्रजापतये स्वाहा इदंप्रजापतये११ओं अग्नयेस्विष्टकृतेस्वाहा इदमग्नयेस्विष्टकृते ।

इस प्रकार द्वादश आहुती करके गृह में जो देव हों तो उनको नैवेद्य दिखावे अनन्तर " वितस्तिमात्रं उदकेन मण्डलं कृत्वातदुपरिबलिहरणंकुर्यात्" जल से वीता प्रमाण मंडल बनाके उसपर बली(भाग-ग्रास)लगावे परंतु जहां पितृ की बलि है वहां अपसव्य हो के देवे । पश्चात् हाथ धोके सव्य हो जो पात्र में से बलि दिया है उस पात्र को धोके वायव्य कोण में छोड़ देवे यही निर्णेजन है ॥

ईशान्याम्	७ ओंप्राच्यैदिशेनमः	आग्नेयाम्
२ ओं विधात्रे नमः	३ ओं वायवेनमः	१ ओं धात्रेनमः
१० ओं उदीच्यै दिशे नमः १७ ओं भूतानां च पतये नमः		८ ओं दक्षिणायैदिशे: नमः
१६ ओं उषसे नमः		४ ओं वायवे नमः
६ ओंवायवे नमः १५ ओं विश्वेभ्योभूतेभ्योनमः		
१४ ओं विश्वभ्यो देवेभ्यो नमः	१३ ओं सूर्यानमः	अपसव्यम्
२० ओंहन्ततेसनका दिमनुष्येभ्यस्योनमः	१२ ओं अंतरिक्षायनमः	१८ ओं पितृभ्यःस्वाधा नमः
	११ ओंब्रह्मणे नमः	
वायव्ये	५ ओं वायवे नमः	
१९ ओं यक्ष्मैतत्तेनिर्णेजनं (पात्रं प्रक्षाल्यक्षिपेत्) सकृद् गायत्रीं जपेत्	९ ओं पश्चिमायैदिशेनमः	

मंडल के वाहर पांच ग्रास देवे

सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णु पदेस्थिता ।
गोग्रासंतुमयादत्तंसुरभिःप्रतिगृह्यताम्–इदंगोभ्यः १
द्वौश्वानौश्यामशवलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ।
ताभ्यामन्नंप्रदास्यामिरक्षेतांपथिमांसदा इदंश्वभ्याम् २
यमोसियमदूतोसि वायसोसिमहामते
अहोरात्रकृतंपापं बलिंभक्षतुवायसः इदंवायसेभ्यः

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाश्च यक्षो रगदैत्य संघाः ॥
प्रेताःपिशाचास्तरवः समस्ता
येचान्नमिच्छन्ति मयाप्रदत्तम् इदंदेवादिभ्यः ४
पिपीलिका कीट पतंगकाद्या
वुभुक्षिताः कर्मनियोग वद्धाः ।
प्रयान्तुतेतृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्योऽवसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥
इदंपिपीलिकाकीट पतङ्गेभ्यः ५

इन वाक्यों करिके पांचों को वलि (ग्रास) देवे अनन्तर ॥

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्यत्र्यायुषम्
यद्देवेषुत्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तुत्र्यायुषम् ॥

इस मंत्र से भस्म लगावे पुनः विसर्जन करे यथा ।

गच्छगच्छसुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ।
यत्रब्रह्मादयोदेवास्तत्र गच्छहुताशन ॥

ॐ यज्ञयज्ञङ्गच्छयज्ञपतिङ्गच्छस्वांय्योनि-ङ्गच्छस्वाहा एषतेयज्ञोयज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्व्ववीरस्तंजुषस्वस्वाहा ॥

इस मंत्र से विसर्जन करके कुश पवित्र का त्याग करे अनन्तर अर्पण करे यथा ।

अनेनवैश्वदेवाख्येन कर्मणा श्रीयज्ञनारायण स्वरूपी परमेश्वरः प्रीयताम् ओं तत्सद् ब्रह्मा र्पणमस्तु ॥

पश्चात अर्पित वलि को गऊ को देवे और जो श्वान वा कौवा आदि की है वह श्वान कौवे आदि को देवे पश्चात हाथ पाव धोकर भोजन करे ॥

वैश्वदेवे अग्नि विचारः

(छन्दोगपरिशिष्टे) यास्मिन्नग्नौभवेत्पाकोवैश्वदेवस्तुतत्रवै (अङ्गिराः) ॥ शालाग्नौचपचेदन्नंलौकिकेवापिनित्यशः यस्मिन्नग्नौपचेदन्नं तस्मिनहोमोविधीयते

अग्निहोत्र के अग्नि से पाक करे चाहे लौकिक अग्निसे करे परंतु जिस अग्नि से पाक करे उसी ही अग्नि में वैश्वदेव करना चाहिये ।

वैश्वदेवे हवनीय द्रव्य विचारः

विश्वामित्रकल्पेफलैर्दधिघृतैःकुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः अलाभेयेनकेनापिकाष्ठैर्मूलतृणादिभिः

जुहुयात्सर्पिषाऽभ्युक्तं तैलक्षारविवर्जितम्
संकल्पयेद्यमाहारंतेनाग्नौ जुहुयादपि ॥

फल, दही, घी मूल [सकरकंद, जमीकंद, रतालू,] शाक और जल आदिसे वैश्वदेवकरे न मिलने पर काष्ठ, पत्ता आदि को ही घी में मिला के अग्नि में आहुती देवे परंतु क्षार की वस्तु न मिलावे अभिप्राय यह है कि वैश्वदेव न छोड़ना चाहिये ।

कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम्
क्षारं च लवणं चैव वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥

कोदव चना, उरदी मसुरी, कुलथी और नोन आदि क्षार वस्तु वैश्वदेव में न लगावे अर्थात् इनकी आहुति न देवे ॥

पट्टकेनभवेद्व्याधिः शूर्पेणधननाशनम्
पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेनतु ।

पत्ते से अग्नि ना जलावे (फूंके) रोग होता है—सूप से धन का नाश, हाथ से मृत्यु और बांस की पोपली के आधार मुखसे सिद्धि होती है .

(मनुः) पंचसूना गृहस्थस्य चुल्हीपेषिण्युपस्करी
कण्डणीचोदकुम्भीच तासांपापस्यशान्तये

गृहस्थ के यहां चूल्हा पोतने आदिमें पीसनेमें कूटने में झाडू देनेमें और जल पात्रादि इन पांचोंमें जीव हत्या नित्य होती है तिसके शान्तर्थ वैश्वदेव करना चाहिये ॥

(गीतायां)यज्ञशिष्टाशिनः संतोमुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः
भुंजते तेत्वघं पापाये पचंत्यात्मकारणात् ।

जो यज्ञसे बचा हुआ भोजन करते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं और जो बिना वैश्वदेव किये ही भोजन करते हैं वे पाप ही भोजन करते हैं। इससे वैश्वदेव अवश्य करना चाहिये ॥ यह वैश्वदेव का बड़ा माहात्म्य है इसके करने से गृहस्थ सब पापों से छूट जाता है और यह कर्म बिना प्रयासही लक्ष्य देने से हो सकता है– अवश्य करना चाहिये।

योगसन्ध्याचिकीर्षूणां मनोरञ्जन कारिका।
वर्णितावर्णिनासम्यग्योगसन्ध्यामयोत्तमा ॥
राकेश रसधर्म्मोर्व्वी सम्मिते वै क्रमेसमे।
तपस्यिने च राकायां सत्कृतिः पूर्णतामिता ॥

इतिश्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमच्छङ्कराचार्य्योऽनुग्रहीतश्टङ्गेरी मठाम्नायि सर्वगुणसंपन्न धर्म्ममूर्त्तिदानाग्रणी श्रीमज्जगन्नाथचैतन्यब्रह्मचारिणां पादाब्जसेविना अष्टाङ्गयोगसमुल्लसित श्रीसदाशिवनारायण ब्रह्मचारिणाविरचिता सकुशलं समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥

शिवः शिवं कुर्यात्

विज्ञापन

विदित हो कि तीर्थाटन करते २ सत्पुरुषों से जो विद्या प्राप्त भई है उसको संक्षेप में सज्जनों के हितार्थ प्रकाशित करता हूं जो साधक इस ग्रंथ के अनुसार ही अभ्यास करेगा उसको ईश्वर कृपा से कुछ भी विघ्न न होके आत्मा का दर्शन अवश्य होगा।

जिस त्रिवेणी संगम को योगी लोग परिश्रम कर के सेः दसद्वारा भृकुटी (भ्रूमध्य) में पहुंच कर इड़ा रूपी गङ्गा पिङ्गला रूपी यमुना और सुषुम्ना रूपी सरस्वती के सङ्गम में स्नान कर मुक्त हो जाते हैं वह त्रिवेणी संगम यहां तीर्थराज प्रयाग में स्वयं प्रत्यक्ष विद्यमान हैं जो कोई इस त्रिवेणी में स्नान करते हैं या स्नान करेंगे उनको सहज ही में मुक्ति का लाभ होगा ऐसा माहात्म्य समझ कर मैंने शताध्यायी प्रयाग माहात्म्य से मुख्य २ श्लोक स्नान, क्षौर, दान, कल्पवासादि का माहात्म्य और स्नान करने की विधि संक्षेप ही में रचना करके "प्रयाग स्नान विधि" नाम करके पुस्तक निर्मित किया हूं जिसमें पार्थिवार्चन की विधि भी लिखा हूं। इसके देखने से ही त्रिवेणी सङ्गम में स्नान करने की अवश्य श्रद्धा होगी परन्तु अभी छपा नहीं।

एक शिक्षावली नाम करके बनाने की श्रद्धा थी और १२५ सवा सौ शिक्षा लिखा भी है कि जिसको पुरुष स्मरण रखने से अवश्य ही बुद्धिमान् हो सकता है और कभी भी कहीं नहीं किसी बात में धोखा खा सकता है। परन्तु यह शिक्षावली जब लोगों की श्रद्धा उन्नति देने में समझी जायगी तभी वो शिक्षा बढ़ा के छपाई जायगी नहीं तो अभी वो ऐसे ही रक्खी है।

योगाभिलाषी

श्रीसदाशिवनारायण ब्र० ब्रह्मचारी

बलुआघाट—प्रयागराज